सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म
का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 52, अंक : 4
जुलाई 2019

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

अमृतकण

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

हे अर्जुन ! योगी पुरुष, ज्ञानी, कर्मी आदि सबसे श्रेष्ठ हैं; अतएव तू योगी बन जा।

* * *

योगिनमपि सर्वेषां मद्‌गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

अन्य समस्त योगियों में जो अपने अन्तरात्मा को मुझ में लगाकर श्रद्धापूर्वक मेरा भजन करता है, मैं उसी को सर्वोत्तम योगी मानता हूँ।

* * *

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

आहार-विहार, कर्मों की चेष्टा एवं शयन जागरण को युक्त रूप से करने वाले पुरुष का योग दुःखों का नाश करता है।

* * *

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्ति योग के द्वारा मेरा सेवन करता है, वह गुणों को अतिक्रम कर ब्रह्मभाव को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

* * *

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

ब्रह्मभाव को प्राप्त पुरुष का आत्मा प्रसन्न होता है। न वह सोच सकता है, न आकांक्षा करता है। भूतों में समान भाव रखता हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त करता है।

* * *

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष : 52 अंक : 04

शंकर शरणदं शरणं व्रजामि

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य–
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसारहेतु रपि यः पुनरन्तकालस्तं
शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि।।

जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत के कर्ता और इसे अपने किए हुए कार्मों के अनुसार सुख–दुःख देने वाले हैं, जो संसार की उत्पत्ति हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देने वाले उन्हीं भगवान शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

जुलाई 2019

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. **विशेष लेख** – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. **सम्पादकीय** – डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी 8
3. **श्रीमद्भागवत मे योग–परिचर्चा** – डॉ. विजय सिंह 11
4. **गुरुदेव के संस्मरण** – जगदीश राए बंसल 14
5. **परम योगिनी सती रानी पिंगला** – उमा शर्मा 18
6. **योगिराज श्री मुलखराज जी महाराज** – दस–दस हजार अश्वमेध यज्ञ 23
7. **अन्तर्मौन द्वारा योग–साधना** – आचार्य श्री चन्द्रप्रकाश शर्मा 30
8. **मण्डी हिमाचल का वार्षिक योग शिविर** – अनिल दुबे 38
9. **सिद्धगुफा आश्रम में विश्वयोग दिवस** 39
10. **योग–आसन** 40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख

दैवी सम्पदा धारण करो

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भगवान् ने सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पदा एवं आसुरी सम्पत्ति का वर्णन किया है और निर्णय में कह दिया ''**दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धाय आसुरी मता**'' अर्थात् दैवी सम्पत्ति मुक्ति की ओर ले जाती है और आसुरी सम्पत्ति बन्धन का कारण होती है। इसलिये हर व्यकित को चाहिये कि वह अपने आप को दैवी सम्पत्ति की ओर ले जाने का प्रयत्न करे। मैं इस बात को तुम्हें प्राय: समझाया करता हूँ कि योग दर्शन के प्रारम्भ में व्यास जी महाराज ने गुणों के अनुरूप हर प्राणी की अवस्था बताई है। तमोगुण वाले मूढ़ावस्था के प्राणी होते हैं। राक्षसी प्रवृत्ति के लोग होते हैं। दूसरे क्षिप्तावस्था के प्राणी रजोगुण प्रधान होते हैं, यह लोग संसारी व्यक्ति होते हैं। सोलहवें अध्याय में ही भगवान ने आसुरी सम्पत्ति के लोगों का वर्णन किया है। ''**इदमद्य मया लब्धम् इमं प्राप्स्ये च मनोरथम**'' ''**असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।**'' आज मैंने यह प्राप्त कर लिया है, आगे अब मैं यह प्राप्त करूँगा, ''अमुक शत्रु को मैंने मार दिया है अब दूसरे को भी मार दूँगा।'' इस प्रकार के विचार वाले व्यक्ति घोर रजोगुणी होते हैं। उसकी दृष्टि में परलोक कोई चीज नहीं। वे कहते हैं स्वर्ग नरक कुछ नहीं है। वे लोग तो ''**यावज्जीवेत सुखी जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत**'' के सिद्धान्त वाले होते हैं। उससे आगे तीसरे प्रकार के प्राणी विक्षिप्तावस्था के सतोगुण प्रधान प्राणी होते हैं। वे कुछ करना चाहते हैं; किन्तु कर नहीं पाते। ठीक रास्ता नहीं मिल पाता इस अवस्था वाले प्राणी में भी एकाग्रता नहीं होती। इससे आगे चौथे प्रकार के एकाग्रावस्था के प्राणी होते हैं। उनमें सतोगुण का पूर्ण उदय हो जाता है। एकाग्रता को पाकर वे लोग कृतार्थ और निहाल हो जाया करते हैं। गीता के सोलहवें अध्याय के प्रारम्भ में जो लोग पूर्ण सतोगुणप्रधान हो जाते हैं, उनकी प्रकृति और स्वभाव कैसा होता है, उन दैवी सम्पदा वाले मनुष्यों में क्या–क्या बातें होती हैं—यह भगवान ने बताई हैं। ये तुम ध्यान से सुनो। सबसे पहली सम्पत्ति है—**अभयम्**—अर्थात् अभय अपने मनों में सोचो, डर किसको लगता है? डर पापी अपराधी को लगता है। जो कुकर्म करता है वह सोचता है कोई मुझे देख न ले, जान न जाये। जो व्यक्ति सत्य पर चलने वाला है, पाप रहित है, वह निडर रहता है। पापी ही डरता रहता है। मुझे सजा न हो जाये, समाज में मेरी बदनामी न हो जाये उसको किसी न किसी प्रकार का

भय लगा ही रहता है। किन्तु जो निर्द्वन्द्व है। उसको कोई भय नहीं होता। धर्मात्मा व सत्य परायण व्यक्ति भय रहित होता है। भगवान के भक्त सर्वत्र अपने इष्ट देव को ही देखते हैं।

सर्व भूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि–ऐसे व्यक्ति को डर किसका? वह देखता है सब में मैं ही हूँ। मैंने तुम्हें समाधि वर्णन के प्रकरण में आनन्दानुगत समाधि के विषय में बताया था कि आनन्दानुगत में योगी आनन्द में ही मग्न रहा करता है। उसके चारों ओर गोलियाँ चल रही हों, कत्ले आम हो रहा हो, उसे भय नहीं रहता। हमारे बड़े गुरु भाई योगिराज मुल्खराज जी पर जब श्री प्रभु जी ने शक्तिपात किया, तो आठ महीने तक उनकी आँखें बन्द ही रहीं। हर वक्त ध्यान ही ध्यान में लीन रहा करते थे जिस समय श्री प्रभु जी बाजार आदि जाते थे, तो वह भी दौड़–दौड़ कर उनके आगे जाते थे, श्री गोपालानन्द जी ने श्री प्रभु जी से प्रश्न किया–प्रभु जी! क्या बात है बाजार में ताँगे, इक्के मोटर गाड़ियाँ चलती हैं इतनी भारी भीड़ में इस हाट बाजार में भाई जी बन्द आँखों से कैसे तेजी से चल लेते हैं। इनकी किसी से टक्कर नहीं होती?'' इसका उत्तर देते हुये श्री प्रभु जी ने कहा–''इसका ड्राईवर संसार के ड्राइवरों से बहुत होशियार है। वह किसी से टक्कर होने नहीं देगा। कारण कि वह सर्वव्यापक शक्ति में लीन रहते थे। व्यापक सत्ता का अनुभव करते थे।'' एक बार ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी और मुल्खराज जी को लेकर श्री प्रभु जी काँगड़े की पहाड़ी पर गये। इन दोनों की आँखें बन्द थी, जिन लोगों की ध्यान में आँखें बन्द हो जाती है बाह्य दृष्टि के लोग इसको ढोंगी समझते हैं। भस्त्रिका भी चल रही थी। घूमने वाले कुछ लोग पहाड़ की ओर पहुँचे वे प्रभु जी से कहने लगे–''दिन समाप्त होने को आ रहा है, यह आप के चेले नीचे कैसे पहुँचेंगे। इनकी आँखें तो बन्द हैं। यह नीचे चल ही नहीं सकेंगे।'' प्रभु जी हँस कर कहने लगे। ''ये तुम लोगों से पहले नीचे पहुँचेंगे।'' वे लोग अश्चर्य मानने लगे कि कैसे पहुँचेंगे। श्री प्रभु जी ने उन दोनों को खड़ा कर दिया और पहाड़ की चोटी पर ले जाकर उन्हें वहाँ से धकेल दिया! वे लोग देखते रहे कि कैसे योगिराज हैं इनको दया नहीं आई, इस प्रकार से नीचे धकेल दिया। यह तो मर जायेंगे। किन्तु उन्होंने देखा–मुल्खराज जी तो इस प्रकार नीचे आये, जैसे चील या और कोई पक्षी आकाश से उड़ता हुआ नीचे की ओर आता है। और गोपालानन्द जी मेंढक की तरह फुदकते हुये एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर कूदते हुये नीचे आ गये और नीचे आकर दोनों खड़े हो गये। अन्य लोग जो ऊपर थे, कई घण्टे बाद नीचे उतर पाये। वे लोग उत्सुकता से आकर देखने लगे कि इनके हाथ पैर अवश्य टूट गये होंगे? किन्तु वे दोनों बिल्कुल ठीक थे। यह है **''अभयम्''** पहाड़ से नीचे डाल दिया गया। किन्तु उन्हें कोई डर नहीं था। प्रहलाद को आग में डाल दिया गया होलिका जल गई। किन्तु प्रहलाद सुरक्षित बच गये। इस प्रकार से दैवी सम्पत्ति वालों में स्वभाव से ही ''अभय'' रहता

है। दूसरी सम्पत्ति है ''**सत्व संशुद्धि**'' अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि। जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया हो वे हर समय ध्यान में बैठे रहते हैं। उनकी ध्यान में ही प्रवृत्ति रहती है। ध्यान में बैठने से सतोगुण बढ़ जाता है। सत्व से ही ज्ञान होता है, प्रेम होता है प्रकाश होता है। आनन्द सतोगुण का भाव है। मुझे एक घटना याद आ गयी। एक बार श्री प्रभुजी वृन्दावन में गौरे दाऊ जी के मन्दिर में गये। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी व अन्य कुछ गुरु भाई साथ थे। वहाँ एक कमरा ले लिया और ठहर गये। वहाँ किसी बृजवासी ने आकर गीत गाया वह गीत मशहूर है–

''हमारी तिहारी नाहि बने गिरधारी।
तुम हो बाबा नन्द के छोरा, हम वृषभान दुलारी''।

उस बृजवासी ने गीत गाया कि ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी चट धड़ाम से जमीन पर गिर गये और बेहोश हो गये। भस्त्रिका चलने लगी वे कांपने लगे। बृजवासी डर गया–महाराज! दौरा पड़ गया, दौरा पड़ गया।'' प्रभु जी कहने लगे–बता! तुमने मेरे लड़के को क्या कर दिया। ''वह बृजवासी बेचारा घबरा गया। बाद में फिर प्रभु जी ने उससे कहा–''नहीं बेटा! तुमने कुछ नहीं किया है। इसमें प्रेम भाव प्रबल है, इसलिये ऐसा हुआ है। इसके बाद श्री प्रभु जी ने गोपालानन्द को उठा दिया और कह दिया जा! ''श्री ब्रह्मचारी जी सीधे चले गये और उस जेठ की तपती रेत में यमुना किनारे बालू में पड़ गये। तीन दिन तीन रात उसी अवस्था में पड़े रहे। चौथे दिन वापिस आये। एक बार मुरादाबाद में अपने बहनोई श्री चण्डी प्रसाद के घर पर भी पाँच दिन तक ऐसे ही पड़े रहे। मालूम पड़ता है कि ये मर गये हैं। क्या हम इनका संस्कार कर दें?'' प्रभु जी ने तुरन्त जवाब दिया। खबरदार! तुम उसे कुछ नहीं करना, उसी प्रकार पड़े रहने दो वह समाधि में है, अपने आप उठ जायेगा। छठे दिन वह अपने आप उठ गये। योगी आनन्दानुगत समाधि में आनन्द से भर जाता है। उसके पास जो भी आता है उसके रंग में रंग जाता है। वह उस मस्ती में शेर, चीते, बिच्छू को पकड़ता है प्यार करने लगता है। इसलिये प्रेम योग से ही आता है। उसी का जीवन आनन्दमय होता है। अस्तु! उससे आगे की सम्पत्तियाँ है ''**दानम् दमश्च यज्ञश्च**'' दैवी सम्पदा वालों में दान की प्रवृत्ति होती है। ''**दमश्च**'' इन्द्रियों पर वे नियन्त्रण रखते हैं। ''**यज्ञश्च**'' बड़े–बड़े यज्ञ करते हैं, अनुष्ठान करते हैं, व्रत करते हैं। '**स्वाध्यायः**' स्वाध्याय में लगे रहते हैं। मैंने तुम्हें स्वाध्याय का अर्थ बताया था–''प्रणवादि मंत्रों का जाप करना स्वाध्याय है और मुक्तिदाता शास्त्रों का पठन–पाठन स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय शील व्यक्ति विष्णु सहस्र नाम का पाठ करते हैं भूख प्यास गर्मी को सहन करके अपनी साधना में लगे रहते हैं। 'आर्जवम्' सम्पत्ति के अभिमान में किसी को दुःख नहीं देते। वे लोग विनम्र होते हैं, झुके रहते हैं। मुझे एक व्यक्ति

की बात याद आ गई। कलकत्ते में हरियाणा भवन में हमारा योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। सत्संग का कार्यक्रम चला हुआ था। एक व्यक्ति अरब खरब के मालिक थे। नाम था उनका सोहन लाल दुग्गड़। वह सत्संग में आये और सबसे पीछे बैठ गये। हमारे सत्संगियों ने मुझसे कहा—''**महाराज जी! दुग्गड़ साहब आये हैं, इन्हें आगे बुला लीजिये।**'' मैंने कहा—''मैं तो दुग्गड़ साहब को जानता नहीं जो दुग्गड़ साहब हो, वह आगे आ जायें। वह वहीं खड़े हो गये और कहने लगे—''महाराज जी! मैं सोहन लाल आप का सेवक हूँ। साहब नहीं। मैं यहीं पर ठीक हूँ। पीछे ही रहूँगा। इतनी सम्पत्ति पाकर भी अभिमान का लवलेश नहीं, इसको कहते हैं, ''आर्जवम्'' लोग थोड़ी सम्पत्ति पाकर गर्जते हैं, दूसरे को डाँटते हैं, फटकारते हैं। ''**अहिंसा सत्यम क्रोधः**'' दैवी सम्पत्ति वालों में अहिंसा वृत्ति होती है। वह मन, वाणी और कर्म से किसी को दुःख नहीं देता। वह व्यक्ति बहादुर है जो दूसरे के तीर सहन करके भी, कड़वी वाणी को सह करके भी, उसका भला करे, वही सच्चा अहिंसक है। 'सत्यम' सत्य बोलो।

''**सत्यंब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्। न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्**'' अर्थात् सत्य बोले, किन्तु कड़ुवा सत्य कभी न बोले। प्यारा झूठ बोल–बोल कर लोग ठकुर सुहाती करते हैं। जयचन्द पृथ्वी राज को बहकाता रहा। यही हार का कारण बना। इसलिये प्यारा झूठ न बोले। ''**अक्रोधः**'' अर्थात् क्रोध का त्याग कर दे। ''**त्याग**'' की भावना सदा मन में रखें। आत्मध्यान परायण को यदि कोई अन्न खिला देता है, तो वह उसके कल्याण का कारण बन जाता है। लुधियाने में हमारे सत्संगी बच्चे राजा राम अग्रवाल थे। रेशमी कपड़े की दुकान थी। एक योगी दोपहर के समय वहाँ आये, चेहरे से तेज चमक रहा था। उन्हें भूख लगी हुई थी। किन्तु, किसी से कुछ माँगते नहीं थे। राजा राम ने उनसे भोजन के लिये आग्रह किया। किन्तु उन्होंने कहा—नहीं, मैं भोजन नहीं करूँगा। अच्छा, मुझे तुम थोड़ा दूध पिला दो। राजा राम ने दूध पिला दिया। दूध पीने के बाद योगी राजाराम से कहने लगा—''तुम माँगो, क्या चाहते हो?'' राजा राम ने कुण्डलिनी के बारे में सुना हुआ था। कहने लगा—महाराज! मेरी कुण्डलिनी जग जाये। उस योगी के संकल्प से राजा राम की कुण्डलिनी जग गई। किन्तु, वह कुण्डलिनी के तेज को सहन नहीं कर सके। पागल जैसे हो गये। उन दिनों हमारे लाहौर आश्रम का प्रचार काफी चल रहा था। उनके रिश्तेदार राजाराम को लेकर हमारे पास लाहौर आये। उन दिनों लाहौर में एक मशहूर वैद्य काली चरण जी हमारे पास आया करते थे। राजा राम की हालत देखकर वह कहने लगे—महाराज! इसको आप कोई साधन न करावें, इन्हें वापिस भेज दें। इसके मौत के लक्षण हैं, आश्रम पर कलंक लग जायेगा। किन्तु हमने उसे अपने पास रख लिया। उसे नेति इत्यादि कराकर नाक से दूध पिलाया। श्री प्रभु जी ने जो हमें अधिकार दिया था, उसके अनुसार नाड़ी विशेष को दबाकर हमने उसकी कुण्डलिनी को

यथा स्थान कर दिया। चार छः दिन में वह ठीक हो गया। फिर वह 20–30 वर्ष तक जीवित रहा। यह दूध पिलाने का फल था। जिस कुण्डलिनी को जगाने के लिये योगी 12–12 साल तक अभ्यास में लगे रहते हैं, योगी के संकल्प से क्षण में ही वह जग गई। लोग ब्राह्मणों को महात्माओं को भोजन कराते हैं ताकि उनका भला हो। दैवी सम्पत्ति वाला मन में शांति धारण करे। निन्दा–चुगली न करें, चापलूसी न करे। प्राणी मात्र के प्रति मन में दया रखें इन्द्रियों की लोलुपता का त्याग करे, नम्रता रखें, लोकलाज रखे। मन में तेज को धारण करे। क्षमा धैर्य रखे। ''**अद्रोह**'' किसी से द्रोह न करें तथा अभिमान न करें। ये छब्बीस लक्षण जिनके अन्दर होते हैं, वे दैवी–सम्पत्ति वाले होते हैं। देख लो! तुम्हारे हमारे किस–किस के अन्दर ये लक्षण हैं। अब आसुरी सम्पत्ति सुन लो। ''**दम्भोदर्पो अभिमानश्च**'' जो ढोंग करे, लोगों को दिखाने के लिये खूब समाधि में बैठते हैं। किन्तु खूब खाते पीते रहते हैं, आनन्द में रहते हैं दिखाने के लिये समाधि लगाते हैं। जिनके अहंकृति रहती है, जो अभिमानी होते हैं। जो अत्यन्त क्रोध करते हैं बहुत कड़वी वाणी बोलते हैं, जिनके अन्त:करण में अज्ञान भरा रहता है। ऐसे लोग आसुरी सम्पदा के होते हैं।

दैवी सम्पदा मनुष्य के मुक्ति का कारण बन जाती है। जिनका सतोगुण चमक उठता है ''**ध्यान योग व्यवस्थितिः**'' हर वक्त ध्यान की प्रवृत्ति बनी रहती है। उनकी ''**सत्व संशुद्धि**'' अर्थात् अन्त:करण की शुद्धि हो जाती है। श्री प्रभु जी अपने मुखारविन्द से नैपाल की अपनी एक घटना बताया करते थे। श्री प्रभु जी समाधि से उठे हुये थे। वहाँ पास में ही एक वनगाय मरी पड़ी थी श्री प्रभु जी ने उस गाय को खींच कर नीचे गड्डे में डाल दिया। ताकि दुर्गन्ध न आये। थोड़ी देर के बाद वह गाय जी उठी और श्री प्रभु के पास आकर कन्धे से अपना माथा घिसने लगी। उस समय महाप्रभु जी को आवाज आती है, ''किससे घृणा करता है यह तो गुण धर्म है, तुम को इससे आगे जाना है''। बस! इसके बाद वह गाय फिर मर गई। यह तो महाप्रभु जी ने ज्ञान देने के लिये जिलाई थी।

इसलिये दैवी सम्पत्ति को बढ़ाने के लिये, तुम्हें गुरु मन्त्र का कम से कम (21,000) इक्कीस हजार जाप अवश्य करना चाहिए, नहीं तो चलते–फिरते, उठते–बैठते करते रहना चाहिये। **युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु** अर्थात् जो ठीक समय पर खाते हैं, ठीक समय पर सो जाते हैं, ठीक समय पर उठ जाते हैं, वे ही योग–साधना कर पाते हैं। थोड़ा बोलेंगे और आहार भी हल्का करोगे, मन्त्र जाप चलता रहेगा, दैवी सम्पत्ति बढ़ती चली जायेगी। इसलिये भगवान् ने जो दैवी सम्पदा के लक्षण बताये हैं इनको धारण करो। ध्यान समाधि का अभ्यास करो अपने को योग ध्यान परायण बनाओ। दैवी सम्पदा से साधक कृपा का अधिकारी बनता है, योग शक्ति सुरक्षित रहती है। बार–बार सभी को आशीर्वाद।

* * *

सम्पादकीय–

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा–व्यास पूजा का पावन पर्व अषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्त अद्‌भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है, बशर्ते व्यक्ति इस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है कि–

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निरारणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। '**गृह्णति उपदिशादि धर्मतिमति–गुरुः**' जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। ''**यदा गीर्यत स्तूयते देव–गन्धर्वा दिमिरिति गुरुः।**'' अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते है वह गुरु है। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। ''**सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व**–(गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। ''**पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।**'' अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में '**रसो वै सः**' कहकर ब्रह्म को रसरूप में माना है। रसों का मूल स्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को

अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है, अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं, तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अर्थात् अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मन के शोधन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव'** – यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है—ऐसा गुरुगीता का वचन है। ''नास्ति तत्त्वं गुरोः परम।'' गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का

जीवन–मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दु:साध्य है। योग से जीवन और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है–

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है, आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्य बोध स्वरूप, चेतन और आनन्द रूप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से, चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मंत्र स्वरूप होकर शिष्य के आध्यात्मिक शरीर में अनुप्रविष्ट तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

"गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धिः स्याद्कदाचन"। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नही करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हे कभी सिद्धि प्राप्त नही होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है और उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अतः शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्त नही रह जाता। इस बार गुरु–पूर्णिमा 16 जुलाई को सम्पन्न होना है। गुरु परम्परा को मानने वाले लोग इस अमृत पर्व को अत्यन्त धूमधाम से मनावें ताकि उन्हें भक्ति–मुक्ति अर्थात् इस लोक के सुख–ऐश्वर्य तथा मुक्ति दोनों ही प्राप्त हों! 18 जुलाई से रुद्र महायज्ञ चलेगा जिसकी पूर्णाहुति 28 जुलाई को होगी।

* * *

सूचना

श्री गुरु पूर्णिमा का उत्सव श्री सिद्धगुफा संवाई धाम में 16 जुलाई को धूम–धाम से मनाया जा रहा है। उस दिन रात्रि में डेढ़ बजे से साढ़े चार बजे तक चन्द्र ग्रहण लगेगा। सूतक दिन में साढ़े चार बजे के पश्चात् लगेगा। अतः रात्रि के समय की आरती व भोजन बन्द रखेंगे। रात्रि में भजन, कीर्तन और सत्संग चलता रहेगा। प्रातः साढ़े चार बजे आरती पूजन होगा। 18 जुलाई से रुद्र–महायज्ञ का आयोजन रहेगा जिसकी पूर्णाहुति 28 जुलाई को होगी।

जय गुरुदेव जी की !

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

रास शब्द का मूल रस है। स्वयं भगवान कृष्ण ''**रसो वै स:**'' ही हैं। वर्तमान भौतिकवादी समय में जब ईश्वर को ही नकारने की प्रकृति जगत में देखी जा रही है। ऐसे समय में गोपियों के अभिसार, रासनृत्य, जलक्रीड़ा, वन विहार आदि जो श्रीकृष्ण द्वारा किया गया है, उसके आध्यात्मिक मर्म को देह–गेह में आसक्त हम सभी कैसे समझ सकते हैं।

आनन्दकन्द श्रीसद्गुरु भगवान के चरणों में हमने घण्टों–घण्टों भाव समाधि में डूबे स्त्री–पुरुषों को देखा है। श्रीकृष्ण में लयता प्राप्त एक गुरुबहन सुबह आरती के समय भाव जगत में स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण करने के भाव में जो आकाश की ओर हाथ उठाये, कनकी ऊँगली ऊपर किये खड़ी थी, वह दोपहर तक सतसंग में उसी प्रकार कई घण्टे अविचल खड़ी रहीं। निष्पंद, अडिग, अविचल।

कहने का तात्पर्य यह कि जिनका अन्तर्जगत में प्रवेश नहीं है। जो स्वार्थ को ही अपना परमार्थ मानते हैं उन्हें रास तत्व का बोध असम्भव है। प्रेम–योग में मर्यादा–अमर्यादा के लिये कोई स्थान नहीं है। जब गीता में भगवान अपने अन्तरंग अर्जुन से कहते हैं–''**सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**''। वहाँ यही बात लागू है।

योगसिद्धि प्राप्त योगी काय–व्यूह के द्वारा एक साथ अनेक जगहों पर शरीर का निर्माण कर सकते हैं तो योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्ण द्वारा प्रत्येक गोपियों के लिए एक ही साथ अनेक शरीर धारण करना तो उनके सहज लीला–कर्म है। गोपियाँ श्रीकृष्ण की आत्मरूपा थी उनमें स्वभावत: श्रीकृष्ण का निरन्तर चिंतन, मिलन की उत्कण्ठा थी। (नोट–श्याम विहारी शुक्ल आनन्दकन्द श्री सद्गुरु जी के कृपा पात्र ने अपने सतसंगियों को एकसमय में दूरस्थ जगहों पर प्रकट होकर उन्हें योग की महत्ता एवं सद्गुरुदेव की कृपा शक्ति का बोध कराया था)

अब उन स्त्री रत्नों के साथ यमुना जी के तट पर भगवान ने रसमयी रासक्रीड़ा प्रारम्भ की। सम्पूर्ण योगों के स्वामी दो–दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये। इस प्रकार एक गोपी एक कृष्ण शोभायमान होते हुये रासोत्सव प्रारम्भ हुआ–

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयो:।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रिय:।।3।। *अ. 33 स्क. 10. पूर्वार्ध*

भावपूर्ण नृत्य एवं गान। गोपियों का जीवन–प्राण कृष्ण हैं। वे श्रीकृष्ण संग नाचते–नाचते

ऊँचे स्वर से मधुर गायन कर रही हैं। भगवान शुकदेव जी कहते हैं कि उनके राग–रागिनियों के गान से यह सारा जगत अब भी गुंजायमान हो रहा है। परीक्षित्! जैसे नन्हा–सा शिशु निर्विकार भाव से अपनी छाया के साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान श्रीकृष्ण कभी गोपियों को अपने हृदय से लगा लेते हैं, कभी प्रेम भरी चितवन से उन्हें देखते हैं। इस प्रकार आत्माराम कृष्ण ने जितनी गोपियाँ उतने कृष्ण बन कर विहार किया।

परीक्षित्! शरद् की वह रात्रि में अनेकों रात्रियों की शोभा छिपी हुयी थी। पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी छिटक रही थी। ऐसे में श्रीकृष्ण ने अपने प्रेयसी गोपियों के साथ यमुना तट पर तथा तटीय वन में विहार किया। भगवान सत्य–संकल्प हैं। यह सब उनके चिद् का ही विलास लीला है। उन्होंने इस लीला में कामभाव को, उसकी चेष्टाओं को तथा उसकी क्रिया को सर्वथा अपने अधीन कर रखा था।

भागवत् बुद्धि सम्पन्न राजा परीक्षित ने भगवान शुकदेव जी से पूछा–''ब्रह्मन्! धर्म मर्यादा के बनाने वाले, उपदेश कर्ता और रक्षक हैं। फिर वे स्वयं धर्म के विपरीत परस्त्रियों का स्पर्श कैसे किया? यद्यपि मैं मानता हूँ कि भगवान श्रीकृष्ण पूर्ण काम हैं फिर भी वे यह निन्दनीय कर्म क्यों किया? मुनिश्वर मेरा यह संदेह आप मिटाइये।

आत्मकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत।।29।। *अ. 33 स्क. 10 पूर्वार्ध*

श्री शुकदेव जी बोले–परीक्षित्! अग्नि सब कुछ खा जाता है परन्तु पदार्थों के दोष से लिप्त नहीं होता। सामर्थवानों की नकल नहीं करना चाहिए। उन्हें वैसा करने की सोचना भी नहीं चाहिए, शरीर से करना तो दूर रहा। यदि मूर्खतावश कोई, ऐसा कर बैठे तो उसका नाश हो जाता है। भगवान शिव ने हलाहल विष पान कर लिया, दूसरा कोई पिये तो जलकर राख हो जाये।

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।।3।।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्।। *अ. 33 स्क. 10 पूर्वार्ध*

अतः शंकर आदि जो ईश्वर हैं उनके आदेशों के अनुसार आचरण करना चाहिये। वे सामर्थ्यवान् पुरुष अहंकार हीन होते हैं। वे शुभ कर्मों एवं अशुभ कर्मों के भोक्ता नहीं होते।

जिनके चरण–रज पाकर भक्त तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ युक्त होकर योगीजन अपने सारे कर्मबन्धन काट डालते हैं। ज्ञानी जिनके तत्व का चिंतन करके तत्स्वरूप हो जाते हैं। वे ही भगवान अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं तब भला उनमें कर्म संयोग की कल्पना कैसे की जा सकती है–

यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिल कर्मबन्धाः।

स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्त–
स्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः।।35।।

अ. 33 स्क. 10 पूर्वार्ध

क्योंकि भगवान सर्व प्राणियों के भर्ता हैं अतः गोपियों का रात्रि में ब्रज से निकलकर श्रीकृष्ण संग रास करना ब्रजवासी गोपों ने श्रीकृष्ण में कोई दोष बुद्धि नहीं किया। वे उनकी योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं–

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् दारान् ब्रजौकसः।।38।।

ब्रह्ममुहूर्त होने पर अनिच्छुक गोपियों को भगवान ने अपने–अपने घर जाने की आज्ञा दिया। भगवान शुकदेव जी बोले–परीक्षित्। जो धीर पुरुष इस दिव्य रास–विलास का श्रद्धापूर्वक पठन करते हैं, उन्हें भगवान की भक्ति प्राप्त होती है। वे कामविकार से छुटकारा पा जाते हैं। वे परम पुरुषार्थ के भागी बन जाते हैं।

* * *

सरल विश्वास

सरल विश्वास और निष्कपटता रहने से भगवान का लाभ होता है। एक व्यक्ति की किसी साधु से भेंट हुई। उसने साधु से उपदेश देने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना की। साधु ने कहा, ''भगवान से ही प्रेम करो'' तब उस व्यक्ति ने कहा ''भगवान को न तो मैंने कभी देखा है और न उनके विषय में कुछ जानता ही हूँ, फिर उनसे कैसे प्रेम करूँ?'' साधु ने पूछा ''अच्छा, तुम्हारा किससे प्रेम है?'' उसने कहा, ''इस संसार में मेरा कोई नहीं है, केवल एक मेढ़ा है, उसी को मैं प्यार करता हूँ।'' साधु बोले, ''उस मेढ़े के भीतर ही नारायण विद्यमान हैं, यह जानकर उसी की जी लगाकर सेवा करना और उसी को हृदय से प्रेम करना।'' इतना कहकर साधु चले गये। उस आदमी ने भी, उस मेढ़े में नारायण हैं, यह विश्वास कर तन–मन से उसकी सेवा करना शुरू कर दिया। बहुत दिनों बाद उस रास्ते से लौटते समय साधु ने उस आदमी को खोजकर उससे पूछा, ''क्यों जी अब कैसे हो?'' उस आदमी ने प्रणाम करके कहा गुरुदेव, आपकी कृपा से मैं अब अच्छा हूँ, आपने जो कहा था, उसके अनुसार भावना रखने से मेरा बहुत कल्याण हुआ है। मैं मेढ़े के भीतर कभी–कभी एक अपूर्व मूर्ति देखता हूँ। उनके चार हाथ हैं–उनका दर्शन कर मैं परमानन्द में डूबा हुआ हूँ।''

–रामकृष्णपरमहंस

।। ॐ श्री राम लाल प्रभवे नमः।।

गुरु देव के संस्मरण

जगदीश राए बंसल 'अधम' 9212434003

हमारे महान देश योग गुरु भारतवर्ष का इतिहास योगियों, सिद्धों और तपस्वियों का कर्म क्षेत्र रहा है। आज भी हिमालय में अनेकानेक सर्वसमर्थ सिद्ध योगीराज महाराज जी अपनी-अपनी साधना रत हैं। गुरु देव जी बतलाया करते थे कि हिमालय में सदा शिव भगवान की गुफा का क्षेत्र पुरातन योगियों का प्रदेश कहलाता है। सिद्धसेवित इस प्रदेश में अनेक चिरंजीवी योगी 200-300-500-700-1000 वर्ष आयु के तपस्या रत हैं। लेकिन कोई भी योगीराज इस धरा-धाम पर अपना पग नहीं रखना चाहता। जब कि अपने गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने समाधि सुख को छोड़कर अपने कलिमल बच्चों के कल्याणार्थ इस अवनि मण्डल पर ही रहने को विवश रहे। ऋषिकेश आश्रम रहते गुरुदेव जी के मन में रह रहकर लहरें उठती रहीं कि हम निवृत्ति मार्ग के पथिक बन जायें। इस लक्ष्य को साधने के लिए एक बार श्री बद्रीविशाल से आगे शतपथ जाने के लिए चल भी पड़े थे। लेकिन ऐन मौके पर श्री प्रभु जी ने अल्मोड़ा से पत्र भेजकर कहीं नहीं जाने का आदेश दे दिया था। यथा-

> शरीर पै भभूति रमाली, तन पै मृग छाला था
> जटा में बट रस भर ली, कन्धे पै कम्बल डाला था।
> गर्म सर्द सहन करूँगा, हाथ कमण्डल काला था
> अन्न का है त्याग मेरा, जीवन मरण का हवाला था।
> दायाँ कदम बाहर रखा तो, डाकिया चिट्ठी लाया था
> पढ़ चिट्ठी गुरु वापिस हो लिये, जो आज्ञा त्रिपुरारी
> प्रभुजी तुम्हें बार-बार बलिहारी....।।

परिणामत: भूलोक पर ही रह कर सिद्ध योगाधिपति गुरुदेव जी अपने प्यारे बच्चों पर अपनी कृपा के बादल बरसाते रहे हैं। इनमें जो साधक गुरु देव के प्रति समर्पित रहते हैं, वे साधारण शिष्यों से अधिक गुरुकृपा के अधिकारी बन जाते हैं। इस प्रकार हम सभी गुरु तत्व के द्वारा कृपाओं का अपनी अल्पमतिनुसार लाभ ले रहे हैं। क्योंकि चाहे कोई आसमां के तारे गिन ले, कोई समुद्र की लहरें गिन ले, कोई सूर्य की किरणें गिन ले मगर जो सदगुरु द्वारा

प्रति पल कृपायें हो रही हैं, उनको गिनना सम्भव नहीं है। मात्र जिन्होंने गुरुदेव को अपने प्राणों में बसा रखा है, वे ही बुद्धिमान–धनवान और शक्तिमान हैं।

इसी प्रकार गुरुदेव जी के एक विशेष कृपापात्र एवं गुरु भक्ति से परिपूर्ण गाँव निराणा निवासी 68 वर्षीय, गुरुदेव भगवान के सम्माननीय मामा पं. रूपचन्द के सुपुत्र और हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री रामधन जी ने दिल्ली आश्रम में तापत्रय पीड़ित के सन्ताप क्षय करने वाले, प्राणी मात्र को अपनी आत्मा में देखने वाले गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के कुछ संस्मरण सुनाए कि–

बात सन् 1966–67 की है। उस समय लाइलाज बीमारी चेचक के कारण मेरे भाई रमेश की मौत हो गई थी। इसी एक सप्ताह के अन्दर हमारे एक बैल, एक भैंस और एक कटड़ी की भी मौत हो गई थी। हमने इस महान दु:ख की सूचना गुरु जी को नहीं दी। हमने सोचा कि गुरु जी को भारी कष्ट पहुँचेगा। मगर आश्चर्य, महान आश्चर्य! कि हमारे अवसाद को जान कर, कहीं दूर योग प्रचार कार्यक्रम के चलते गुरु जी का पत्र आया कि मामाजी (मेरे पिताजी) रमेश मेरे पास है। वह पुन: यथा शीघ्र आपके पास आ जाएगा। कहते हैं योगी वचन पलटै नही, पलट जाये ब्रह्माण्ड। अर्थात् ठीक एक वर्ष पश्चात् मेरी माँ को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम भी मेरे पिताजी ने रमेश ही रखा। भाई रमेश इस समय मंगलकारी गुरुदेव जी की छत्र छाया में आनन्द मय जीवन व्यतीत कर रहा है। ऐसे प्रतापी हैं हमारे भाग्य विधाता गुरुजी महाराज।

यह बात उन दिनों की है, जब मैं आठवीं कक्षा में पढ़ा करता था। मेरा पढ़ाई में बिल्कुल मन नहीं लगता था अत: मैंने अपना मन बनाया कि अब की बार बोर्ड की परीक्षा है, फेल होने से अच्छा है कि परीक्षा ही न दूँ। लेकिन कमाल तो उस समय हो गया जब मेरे नाम पर गुरु जी का पत्र आया कि चि. रामधन तुम श्री प्रभु जी का नाम लेकर आठवीं की परीक्षा में अवश्य बैठो, वे कृपा निधान तुम्हें अवश्य सफलता देंगे। मैंने गुरुजी का वरद हस्त अपने सिर पर जान कर गुरु आज्ञा का अक्षरत: पालन किया। अब उस जादूगर की जादूगिरि देखिये कि हम आठवीं कक्षा के चालिस सहपाठी परीक्षा में बैठे थे उनमें से एकमात्र मैं ही क्लीयर पास हुआ। शेष सभी छात्रों का परिणाम लेट हो गया था। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा अत: मैं उछलता कूदता गुरु गुण गाता फिरा कि वाह गुरु जी..... मेरे गुरु जी ...... जय हो गुरु जी .... वाह गुरु जी ....। क्योंकि अब मुझे–

न खिलने की चिन्ता–न मुरझाने का डर।
न टूटने का फिकर, न बिखरने का कहर।।

मुझे दीक्षा लेने का सौभाग्य सन् 1988 में मिला था चूँकि गुरुदेव का हृदय सागर से भी

गहरा है। यह बात जिनको गुरुदेव जना दें वे ही गुरु जी के ऐश्वर्य, प्रभाव, महिमा और समग्र चरित्र को जान सकता है। भक्त शिरोमणी बाबा तुलसीदास ने कहा है कि **सोई जानत जेहि दे जनाई।** अत: मेरी दीक्षा के समय मंगल मूर्ति, दया निधि गुरु जी ने मुझ पर तीव्र शक्ति पात करके ढई घण्टे ध्यान में बैठा कर देव लोक के तमाम दृश्य दिखा दिए थे। उस अनुभव को तो क्या बतलाऊँ, क्या छुपाऊँ? क्योंकि विभूति पाद में वर्णित समस्त विभूतियों के विजेता गुरुदेव जी ने कहा था कि साधक एवं योगी को अपनी उपलब्धि एवं शक्ति का दुरुपयोग अथवा प्रदर्शन नही करना चाहिए। अपितु योगी को समुद्र पी कर भी होठ सूखे दिखाने चाहिए। वैसे कुछ बातें देव लोक की गुरु जी अपने प्रवचनों में किया ही करते थे कि देखो लल्ला! स्वर्ग लोक मे बुढ़ापा नहीं आता। वहाँ पर रोग नहीं आता। संकल्प मात्र से इच्छित भोग मिल जाते है। देव वहीं बैठे आशीर्वाद दे सकते हैं। वहीं से बात कर सकते है। सुनना चाहें सुन सकते हैं, सूंघना चाहें सूंघ सकते हैं। रस ग्रहण करना चाहें तो कर सकते है। कहीं छूना चाहे तो छू सकते हैं ... इत्यादि। योगी भी ये सब शक्तियाँ प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। गुरु देव जी ये सब बातें स्वर्ग लोक के अपने साक्षात्कार के आधार पर ही बतलाया करते थे। ऐसे महासिद्ध योगी गुरुदेव के समक्ष या इनसे बढ़कर परिपूर्ण गुरु मिलना इस कलिकाल में पूर्णतया असम्भव बात है। न जाने किस पूर्व कृतशुभ संस्कार के कारण हमें इन्होंने स्वीकारा है। हमें अपने महान गुरुदेव पर पूर्ण गर्व है। कहते हैं कि–

आग लगी आकाश में, झड़ झड़ पड़े अंगार।
दुनिया में गर गुरु न होते, जल जाता संसार।।

यह बात सन् 1970 की है। मेरे पिता श्री रूपचन्द जी को पेशाब आने में बाधा पड़ गई। हम इलाज के लिए उन्हें पानीपत के एक निजी अस्पताल में ले गए। वहाँ इलाज के प्रथम चरण में ग्लूकोज चढ़ाया जा रहा था कि अचानक हमारे गाँव के चौ. चूड़ा सिंह भू. पू. एम. एल.ए. साहिब आ धमके। कुछ देख भाल करने के पश्चात् श्रीमान जी मेरे पिता जी को स्थानीय सरकारी अस्पताल में ले गए। वहाँ डा. साहिब ने बताया कि इस रोग का एकमात्र निदान आपरेशन है, जो कल हो सकेगा। चौ. साहिब ने डॉ. से कह कर नारायण दत्त नामक एक लड़के को मेरे पिता जी की सेवा में रखवा दिया। आपरेशन की बात सुन कर मेरे पिता जी घबरा गए और बार बार गुरुजी ...गुरुजी... पुकारने लगे। यह पुकार बार–बार सुनकर वह लड़का नारायण दत्त अपने ही मनमाने से लहजे में बोल उठा कि आपके गुरु में शक्ति होगी तो ही तो दर्शन देंगे। उसे क्या पता कि चींटी के पग नुपुरबाजे तो भी हमारी सरकार सुन लेते हैं और अपनी करुणा कृपा से बड़े–बड़े अनिष्ट दूर कर देते हैं। कहते है–

जिसने तेरी याद को दिल में बसा लिया।
सोए हुए नसीब को उसने जगा लिया।।

देखिए कैसा चमत्कार बना कि जिस प्रकार शबरी की पुकार पर श्री राम पधारे थे, द्रोपदी की पुकार पर श्री कृष्ण भगवान पधारे थे उसी प्रकार से अगले ही दिन अर्थात् आपरेशन के दिन बिना किसी सूचना के गुरुदेव भगवान जिनका पुष्ट शरीर, तेजोमय मुख मण्डल, चमकीले नयन, मुस्काते होंठ, धोती–कुर्ता धारी, बैंत लिए महकी–महकी चाल चलते अस्तपाल में आन पधारे। बोले–ये लो पुष्प प्रसाद और श्री प्रभुजी का नाम लेकर इसे खा लो और ऑपरेशन अवश्य कराओ, तुझे कोई कष्ट नहीं होगा, तू मेरी गोद में रहेगा। परिणामतः आपरेशन सफल रहा। तनिक भी पीड़ा नहीं हुई। पिता जी को ऐसा लगता रहा कि आराध्य देव जी मेरे पास ही विराजे हैं। गुरुदेव की अस्पताल वाली छवि आज भी मेरे हृदय में ज्यों की त्यों अंकित है। किसी भक्त ने सच ही कहा है कि–

ये तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिए ऐसे गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।।

यह बात एक जनवरी सन् 1990 की है। गुरु जी का पानीपत में योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। अपने व्यस्त समय से कुछ समय निकाल कर आशुतोष जी, हमको निहाल करने गाँव निराणा आन पधारे। किसी बात के चलते गुरु जी अपनी एक विशेष और गम्भीर एवं मार्मिक मुद्रा में भावुक से हो कर बोले कि निराणा (गाँव) मेरी माँ की जन्मभूमि है, जो मुझे अपनी जन्मभूमि अलुपुर से भी प्यारी है ....। इस अद्भुत शैली में प्यारी बुआ धरती की याद, माँ के प्रति बेटे के प्यार और निष्ठा से प्रभावित हो कर हमारे (बाप–बेटे) नैयन छलक उठे। हमको आश्रु पूर्ण देखकर आ गई लहर शिवा के मन में और दया निधि ने अपनी धोती की कोर से हमारे आँसू पोंछते हुये प्यारी–प्यारी मुस्कान के साथ हमें आस्वस्त किया कि तुम जब–जब मुझे याद करोगे, मैं तुरन्त प्रकट हो जाया करूँगा, मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ और रहूँगा .... इत्यादि। गुरु जी का दिया हुआ यह वचन अक्षरतः सिद्ध हो रहा है। भगवान जिसको देता है छप्पर फाड़ कर देता है। ऐसे परम हितकारी–अमंगल हारी, कृपा सिन्धु के श्री चरणों में बार–बार बलिहारी। मेरे मन में यह भी आता है कि इस आशीर्वादात्मक वचन में एक दूरदर्शिता छिपी हुई थी जो हमें उस काले भयावह के दिन 25 जून सन् 1990 को समझ में आई।

इस प्रकार की गुरु कृपायें तो अनन्त हैं। कहाँ तक वर्णन करूँ? हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता वाली बात है। उनकी अहेतुकी कृपायें सब पर बनी रहें। जय गुरुदेव।

बरसातों के बाद सतरंगी धनक आएगी।
श्री चरणों में नमन करो चेहरे पर चमक आएगी।

जय गुरुदेव !

* * *

परम योगिनी सती रानी पिंगला

(सुश्री उमा शर्मा, बी. ए. शामली)

इससे पूर्व प्रकाशित लेख में मैंने परम योगिनी सती मालावती का सतीत्व और उसकी योग–शक्ति का कुछ परिचय दिया था कि किस प्रकार उस परम सती ने अपने एकाग्र हुए मन की ताकत के द्वारा अपने पति की मृत्यु हो जाने पर भी यमादि से छुड़ा लिया और उसको जीवित कर लिया था। यह उस परम सती की ही शक्ति थी कि उसने सती सावित्री की भाँति ही अपने पति के प्राणों को यम, मृत्यु और काल से भी छुड़ा लिया। यम, मृत्यु और काल उस सती के सतीत्व से खड़े–खड़े काँपते रहे थे और उसी समय उस सती को उसके पति के प्राण उन्हें लौटाने पड़े। अन्ततः सब देवता उसकी शक्ति को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उसी प्रकार हमारे धार्मिक इतिहास में अन्य सतियों के चरित्रों का भी वर्णन मिलता है। यती के यतीत्व और परम सती के सतीत्व का ही प्रभाव है कि जो धरा बिना आधार के खड़ी रहती है। परम सती रानी पिंगला के पति चन्द्रावती के परमारवंशी अन्तिम नरेश हून जंगल में आखेट के लिए जाया करते थे।

एक समय राजा शिकार से लौटकर घर आये आकर के अपनी पत्नी रानी पिंगला से कहा–''मैंने एक सती के दर्शन किये हैं। आज मेरे भाग्य धन्य हैं! ऐसी सती तो मैंने अब तक देखी भी नहीं।'' राजा का स्वर और हृदय गद्गद हो रहा था। परम श्रद्धा से उनके नेत्र भर आये थे। सबसे बड़ा आश्चर्य तो राजा को यह था कि व्याध जैसी छोटी जाति में भी ऐसी सतियाँ होती हैं। उन्होंने वन में एक व्याध को सर्प के काटने से मरते देखा था। उसकी पत्नी ने स्वयं चिता निर्माण करके पतिदेह के साथ अग्नि प्रवेश किया था। जलते समय उस स्त्री के मुख पर विषाद के बदले प्रसन्नता के चिह्न स्पष्ट हो रहे थे।

'निश्चय ही वह एक वीर स्त्री है। फिर भी उसे, नहीं कहना चाहिए, क्योंकि पति की मृत्यु के पश्चात् जो जीवित रहे, सती कैसी? पति की मृत्यु का समाचार पाते ही सती स्त्री पति का कोई चिह्न लेकर अविलम्ब शरीर छोड़ देगी। महाराज से यह सब कुछ सुनकर रानी ने कहा–''ऐसी सती तो रानी पिंगला ही होगी' महाराज को पत्नी द्वारा एक सती का उपहास करना अत्यन्त अरुचिकर प्रतीत हुआ। उन्होंने रानी पर व्यंग्य किया।

राजा के भाव को समझ कर रानी ने सोच लिया कि कभी उसकी परीक्षा अवश्य होगी। उसे पश्चाताप भी हुआ पर अब तो मुख से बात निकल चुकी थी। अवसर पाकर अपने

धर्मगुरु भगवान् दत्तात्रेय के राजसदन में पधारने पर एक दिन रानी ने प्रार्थना की—'प्रभो! मेरे स्वामी बराबर आखेट और युद्धों में लगे रहते हैं। ऐसे समय शत्रु देश में बहुधा राजा की मृत्यु का समाचार प्रसारित कर देते हैं। यदि ऐसा अवसर आवे तो मैं कैसे समझूँ कि मेरे पतिदेव जीवित है या नहीं?

भगवान दत्तात्रेय ने कहा! 'लड़की! तू मुझसे भी छिपाती है। तू जाने या न जाने, परिणाम तो एक ही होना है जो भी हो तेरी इच्छा है यह बीज ले तू। दत्तात्रेय ने एक बीज उसे दे दिया और कहा—'इस बीज को अपने आँगन में बो दे। एक छोटा सा पौधा हो जायेगा। जब तुझे महाराज के जीवन में शंका हो तो वृक्ष से स्नान करके पूछना यदि राजा जीवित हुए तो वृक्ष से जल की बूँदें टपकेंगी और यदि वे धरा पर न हुए तो वृक्ष के पत्ते तुरन्त सूख कर गिर पड़ेंगे।' दत्तात्रेय यह एक बीज दे कर आगे चले गये। रानी ने उसे सावधानी से बोया। वह उगा और प्रेमपूर्वक सींचने से हरा भरा हो गया।

राज्य में दस्युओं का उपद्रव बढ़ा। नरेश को उनके दमन के लिए जाना पड़ा। दस्युओं का दमन करके लौटते समय उनके मन में रानी के सतीत्व की परीक्षा का विचार हुआ। उन्होंने संवाद भेजा कि 'दस्युओं ने राजा को मार डाला है' दूत को उन्होंने यह भी समझा दिया कि अन्तिम क्षण में वह बता दे कि समाचार मिथ्या है। दूत राजमुकुट लेकर राजधानी पहुँचा। द्वार पर से ही उसने रोना–पीटना शुरु कर दिया। दूर से ही उसे देखकर रानी ने सखियों से कह दिया कि अमंगल का समाचार लेकर दूत आ रहा है। रानी ने दूत के द्वारा भेजे हुए राजा के छिपे भाव को तत्काल ही इसलिए जान लिया था, क्योंकि रानी का मन एकाग्र था उसने अपने मन को अपने पति में केन्द्रित किया हुआ था। बस प्रत्येक व्यक्ति के लिए मन को एकाग्र करना ही अपना मुख्य लक्ष्य रखना चाहिए। संसार में प्रत्येक कार्य के लिए एकाग्रता की आवश्यकता है। मैंने अपने पहले लेख में भी संकेत मात्र किया था तथा, हमारे श्री गुरुदेवजी भी अपने व्याख्यानों में बतलाया करते है कि योग की वर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से ही प्रारम्भ होती है, और महर्षि पतंजलि जी ने अपने योगदर्शन में कहा है कि—

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः

अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है। परम योगिनी रानी पिंगला ने भी स्वयं अपने मन की एकाग्रता से ही राजा के भावों को तत्काल जान लिया। दूत समाचार लेकर राजा के भवन पर आया और सब समाचार रानी से कहा। दूत से समाचार पाकर रानी ने स्नान किया और भगवान दत्तात्रेय के दिये हुए उस पौधे के पास पहुँची। पूछने पर वृक्ष के पत्तों से जल बिन्दु टपकने लगे। अतः राजा जीवित है, इतना तो निश्चय हो गया।

रानी सोचने लगी, महाराज ने मेरी परीक्षा के लिए दूत भेजा है। उनकी इच्छा है कि मैं शरीर छोड़ दूँ। पति की इच्छा में रहना ही स्त्री का धर्म है। यह बात सत्य भी है।

स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।

इस भगवद्वाक्य पर विश्वास करने वाली धर्माभिमानिनी भारतीय नारी, धर्म शास्त्र की इस व्यवस्था को अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण अथवा अपने उन्नति–पथ में बाधक नहीं अनुभव करती, अपितु इसी मर्यादा में रहकर लोक परलोक को उज्जवल बनाने वाले सतीत्व धर्म का दृढ़तापूर्वक पालन करती हुई व्यवहार में नारी धर्म का आदर्श एवं परमार्थ में परम–कल्याण सम्पादन करती है।

नारी धर्म निर्देश करते हुए धर्मशास्त्र कहता है–

नास्त्रि स्त्रीणां प्रथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रषते येन तेन स्वर्गे महीयते।।

अर्थात् स्त्रियों के लिए पृथक् रूप से कोई यज्ञ, व्रत या उपवास करने की आवश्यकता नहीं है, केवल पति–परायणता के द्वारा ही वे उत्तम गति को पा सकती हैं। क्योंकि गीता में कहा है–

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित:।।

अर्थात् मरणकाल में जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है उसी भाव से भावित होकर उसी भाव प्रधान गति को प्राप्त होता है। इस सिद्धान्तानुसार वह पति में ईश–बुद्धि रखने वाली पतिव्रता नारी पति रूप भगवान की उपासना करती हुई मरणोपरान्त भगवान के लोक को ही प्राप्त होती है।

अन्त में रानी ने सोच लिया कि परलोक में तो वे मुझे अवश्य ही प्राप्त होंगे। यदि इस समय में शरीर नहीं छोड़ूंगी तो मेरा पितृकुल भी कलंकित होगा। रानी पिंगला ने नरेश को जीवित जानते हुए भी, मरने का निश्चय कर लिया।

रानी पिंगला परम योगिनी थी। उन्होंने पति के मुकुट को गोद में लेकर पद्मासन लगाया। अपान प्राण से मिलकर समान एवं उदान को लेता हुआ, कण्ठ से भ्रूमध्य में पहुँचा। उसी समय दूत ने कहा, ''महारानी! यह सम्वाद मिथ्या है।'' महारानी सुनने की सीमा से बाहर हो चुकी थी ब्रह्मरन्ध्र से उसका प्राण निकल चुका था। दूत लौट चला।

दूत भेजने के बाद ही राजा को ध्यान आया कि रानी कहीं सचमुच ही प्राण न छोड़ दे। क्योंकि ये उक्ति सर्वदा से चरितार्थ होती आई है–''राज हठ, बाल हठ, तिर्या हठ'', ये तीनों

हठ संसार में प्रसिद्ध है। राजा की बालक की और स्त्रियों की हठ।

अतः राजा यथासम्भव तीव्र गति से नगर की ओर चले। मार्ग श्मशान के समीप से था। उन्होंने देखा कि एक चिता से लपटें उठ रही हैं चन्दन की सुगन्ध आ रही है। ज्ञात हुआ कि रानी पिंगला ने शरीर छोड़ दिया है और उनका शव दाह हो रहा है। राजा विक्षिप्तप्रायः हो गये। वस्त्रा–भूषण उन्होंने उतार फेंके और पैदल ही श्मशान को चल दिये। उनके साथ कोई नहीं था। श्मशान से भी लोग शव जला कर जा चुके थे। राजा पागलों की भाँति रोते हुए श्मशान में इधर–उधर घूमने लगे।

परम सिद्ध गोरखनाथ जी ने राजा को इस दशा में देखा। महापुरुष के हृदय में दया का संचार हुआ। यह बात सत्य ही है कि महापुरुषों का हृदय दया से भरा हुआ होता है। हमारे आनन्द कन्द कल्याण धन योग योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज भी पूर्ण करुणा और दया को भरकर ही अपने प्यारे बालकों को कृतार्थ करने के लिए इस अवनी मण्डल पर अवतरित हुए और आज संसार के एक–एक कोने में अपनी कृपा से अपने चरणों की कृपा बरसा रहे हैं तथा अपने पाप ताप पीड़ित जनों का उद्धार कर रहे हैं।

इसी प्रकार परम सिद्ध योगी गोरखनाथ जी ने राजा को देखा, ये उस राजा के समीप गये। पूछने पर राजा ने पत्नी की मृत्यु का वर्णन फूट फूट कर रोते हुए किया। इतनी बात सुनते ही गोरखनाथ जी के हाथ की हंड़िया छूट कर गिर गयी और टुकड़े–टुकड़े हो गयीं। वे हंड़ियों के टुकड़ों को समेटकर हाय–हाय करके चिल्लाने लगे। राजा को आश्चर्य हुआ। उसने कहा–'आप दो कौड़ी की हंड़ियों के लिए इतने बड़े महात्मा होकर इस प्रकार क्यों रो रहे हैं, इससे अच्छी अनेक हंड़ियाँ आपको मिल जायेंगी मिट्टी की ही तो थी, फूट गयीं फूट जाने दो?

सन्त ने क्रोध का नाटक (अभिनय) करते हुए कहा–'मेरी हंड़ियाँ तो मिट्टी की थीं और तेरी स्त्री सोने की बनी थी क्यों? मुझे इससे अच्छी हंड़ियाँ तो मिल जायेंगी और तुझे संसार में दूसरी स्त्री ही नहीं मिलती? मेरी हंड़ियाँ तो भला दो कौड़ी की थीं, तेरी तो उतने की भी नहीं थीं। तेरे क्षणिक सुख के अतिरिक्त वह क्या करती थीं? मेरी हंड़ियाँ तो मेरे साथ हर समय रहती थीं। इसी में मैं पानी पीता था। इसी में माँगकर भिक्षा कर लेता था। इसी को सिर के नीचे रखकर सो जाता था। बड़ा बुद्धिमान बना है। मुझे उपदेश देने आया है। तू मेरी हंड़ियाँ जोड़ दे, मैं स्त्री जिलाये देता हूँ। साधू ने क्रोध का नाटक किया।

राजा ने कहा–'प्रभो! आप समर्थ हैं। मैं तुच्छ जीव आपकी शरण हूँ। उस सती साध्वी परम योगिनी पत्नी के बिना मैं जीवित नहीं रह सकूंगा। आप उसे जीवित कर दें।' राजा ने

रोते–रोते उस महात्मा के चरण पकड़ लिये।

उस महान योगी ने अपनी योग शक्ति से एक चुटकी भस्म चिता के ऊपर फेंक दी। और कहा–'ले, पहचान ले–इनमें तेरी पिंगला कौन है? उस जगह पूरी भीड़ खड़ी होती चली गई जिस समय साधू ने यह शब्द कहे। वे सब स्त्रियाँ रूप–रंग में पिंगला के ही समान थीं। राजा ने पहचानने में असमर्थ होकर फिर प्रार्थना की। सन्त ने ताली बजाई और वहाँ असली पिंगला रानी खड़ी हो गईं।

अचानक ही साधू की कृपा से यह हुआ कि राजा के अन्दर जितना मोह था वह इतने तीव्र वैराग्य में बदल गया कि उसने पिंगला को देखते ही अपना मुँह फेर लिया और सन्त के चरणों में गिर पड़ा। यह थी यौगिक शक्ति–

कर्तुम् मकर्तुं अन्यथा कर्त्तुं सर्वथा सक्तः स सिद्धः।

अर्थात् करदे, किये हुए को बिगाड़ दे, और बिगड़े हुए को फिर बना दे। उसी का नाम 'सिद्ध' है।

राजा का मोह दूर हो गया। उसने महात्मा से कहा–अब मेरा मोह दूर हो गया। राज्यसुख बहुत भोग लिया। अब तो आप मुझे श्री चरणों में स्थान दें। राजा ने संत के चरण पकड़ लिये। उन्होंने नहीं देखा कि कब वह माया–पुत्तलिका अदृश्य हो गयी। महात्मा तो कृपा करने ही पधारे थे। वहीं से नरेश गुरु के साथ वन में साधना और तप करने चले गये।

यह है सिद्धों की कृपा, राजा का वैराग्य और उस परम योगिनी सती पिंगला का पातिव्रत्य। जो रानी होते हुए भी अत्यन्त पातिव्रत्य के पालन करने मात्र से ही योगिनी थी और योगी सिद्धों की तरह प्रसन्नता पूर्वक जिसने अपने प्राणों का त्याग किया।

* * *

यमान सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो केवलान् भजन्।।

बुद्धिमान् को चाहिए कि यमों का लगातार सेवन करे, नियमों का ही नहीं, क्योंकि केवल नियमों का सेवन करने वाला यमों का पालन न करता हुआ गिर जाता है।

–मनु.

योगिराज श्री मुलखराज जी महाराज

दस–दस हजार अश्वमेघ यज्ञ का फल

एक बार सद्गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्रीरामलालजी महराज ऋषिकेश में विराजमान थे। किसी सांसारिक व्यक्ति ने आकर के उनके चरणारविन्दों में प्रश्न किया कि प्रभो! सुनने में आता है कि मनुष्य की कोई स्थिति इस प्रकार की आया करती है कि उस स्थिति में यदि वह एक–एक कदम आगे जावे तो उसको दस–दस हजार अश्वमेघयज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है। यह स्थिति कौन सी है जिसको पाकर के मनुष्य इतने महान् पुण्य का भागी बन जाता है।

उस समय श्री मुलखराज जी श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में बैठे थे। इनकी ओर देख करके श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी–''बेटा, ध्यान में देखकर बतलाओ कि किस स्थिति में जाकर मनुष्य एक–एक कदम बढ़ाने पर दस–दस हजार यज्ञों के फलों को पा जाता है।

श्री मुलखराज जी श्री कृपानिधानजी की आज्ञा को पाकर तत्काल ध्यान में बैठ गये। उन्होंने देखा एक बड़े दिव्य सुन्दर प्रवेश में एक दिव्य प्रकाशनीय सिंहासन है। उस सिंहासन पर परम सद्गुरु तत्व मूर्तिमान होकर विराजमान हैं। श्रीप्रभुजी का वह रूप अद्भुत व अलौकिक था परात्पर ब्रह्म–प्रकाश था। श्री मुलखराज जी महाराज ने ऐसे अचिन्त्य रूप को देखा। वेदों की ऋचायें जिसकी स्तुति गा रही थीं, देव लोग पुष्प वर्षा कर रहे थे। ऐसे नित्य परात्पर शुद्ध स्वरूप को देख करके श्री मुलखराजजी तनमन से न्यौछावर हो गये और एक कदम बढ़ाकर साष्टाँग दण्डवत् प्रणाम करने लगे। श्री प्रभुजी ने अपना परम तेजोमय कर–कमल बढ़ा करके उनको आशीर्वाद दिया। उस आशीर्वाद के साथ यह मालूम पड़ता था कि बहुत बड़ी अखण्ड तेज राशि उनके शरीर में प्रवेश कर रही है। इसी प्रकार दूसरा कदम बढ़ाकर साष्टाँग दण्डवत् प्रणाम किया। पुनः इसी प्रकार श्री प्रभुजी ने अपना कर कमल बढ़ाकर आशीर्वाद दिया और इस बार भी आशीर्वाद के साथ ही तेजराशि पुनः उसी प्रकार उनके शरीर में प्रवेश कर गई। इसी प्रकार ज्यों–ज्यों कदम बढ़ाकर के मुलखराज जी साष्टाँग प्रणाम करते थे त्यों–त्यों वे धारायें उनको प्राप्त होती रहीं। अन्त में वे परम सद्गुरु तत्व श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में लिपटते ही श्री मुलखराज जी अपनी नाम रूपी सत्ता को

खो बैठे। वह वहीं रह गये जहाँ जिनके चरणों पर उन्होंने अपने आपको न्यौछावर किया था।

इस दिव्यानुभव को देखकर श्री मुलखराज जी ध्यान से उठ बैठे। पूछने पर अपने ध्यान का पूरा अनुभव प्रश्न करने वाले जिज्ञासु को सुना दिया और बतला दिया कि यही वह परम तत्व है जिसके ऊपर न्यौछावर होने पर एक एक कदम बढ़ाने से दस–दस हजार अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त होता है शास्त्र का वचन है–

'गुरु भक्ति सदा कुर्यात्।
श्रेयसे भूयसे नरः'।।

यदि मनुष्य परम कल्याण को चाहे तो उसे गुरु भक्ति करनी चाहिए। परम कल्याण का स्रोत श्री गुरुदेव के चरण कमलों से बहता है। प्रश्न कर्ता जिज्ञासु को यथोचित उत्तर पाकर के परम सन्तोष हुआ और उसने जान लिया ''नास्ति तत्वं गुरो परम'' अर्थात्–गुरुदेव से बढ़कर के इस संसार में और कोई तथ्य नहीं है।

तृतीय नेत्रदान

एक बार श्री मुलखराज जी की अत्यन्त विनय और नम्रता पर हर समय आह्लादित रहने वाले योग–योगेश्वर ने श्री मुलखराज जी को अपने पास बुलाया और इनके दोनों ध्रुवों के बीच के माँस को थोड़ा हाथ से खींच दिया। ऐसा करने पर आज्ञा प्रदान की कि बेटा तुम यहाँ बैठे रहो कुछ देर में तुम्हें यहाँ जलन मालूम पड़ेगी और प्रकाश मालूम पड़ेगा तब तुम हमें बतला देना। ''इस तृतीय नेत्र के प्रकाश को श्री मुलखराज जी चलते–फिरते उठते–बैठते हर समय देखते रहा करते थे। दिन–प्रतिदिन इसका प्रकाश आति उज्जवल होता चला गया।''

सिद्ध लोक दर्शन

एक रोज श्री प्रभुजी ने आह्लादित मन से कहा–ऊपर आकाश की ओर तो देखो। ज्यों ही श्री मुलखराज जी ने अपनी दृष्टि को ऊपर उठाया, थोड़ी ही देर में इस तृतीय नेत्र के प्रकाश में अनन्त लोक दिखलाई दिये। उसके बाद थोड़ी देर में दृष्टि सिद्धलोक को चली गई तो श्री मुलखराज जी ने अनन्त प्रकाशमय श्री सिद्ध लोक को देखा। उसमें कपिलादिक महासिद्ध दिव्य तेजोमय रूप से विराजमान थे। वहाँ पर तम का लवलेश भी नहीं था। इस अद्भुत दृश्य को देख करके श्री मुलखराज जी कृतार्थ हो गये।

यस्य कृपांशात् सुविनिष्ट।
पापः स्तृतीय नेत्रेण समेद्गतेन।।
महाप्रकाशेन सुसिद्ध लोक।
मीक्षेच बाह्य मुलखस्ततत्राश्रये।।

अर्थात्–जिनकी कृपा के एकांश को पाकर के महाप्रकाश–मय तृतीय नेत्र को पा लिया और उस तीसरे नेत्र को पाकर के परमप्रकाशमय उस सिद्धलोक को क्षणभर में देख लिया। ऐसे योग–योगेश्वर परम् प्रभु रामलाल जी हम सबके आश्रय स्थान हैं, उनकी चरण शरण से ही हम सब भी कृतार्थ होंगे। श्रीमुलखराज का हृदय परम सन्तों जैसा हृदय था। वह बड़ी जल्दी दयालू हो जाया करते थे। एक बार उनको ध्यानस्थ देखकर गरीब ब्राह्मण ने प्रार्थना की कि महाराज मैं लगभग 26 वर्ष से ध्यान का अभ्यास कर रहा हूँ किन्तु मुझे कोई अनुभूति नहीं होती। श्री मुलखराज जी का हृदय उस ब्राह्मण की सत्यवादिता पर बहुत प्रसन्न हो उठा और उसे श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में ले गये और उसकी यथार्थ स्थिति बतला दी। श्री परम कृपासागर प्रभुजी ने उसको पुष्प प्रसाद दिया उसके फलस्वरूप उसी समय से उनको दिव्य दर्शन प्रारम्भ हो गये। वह दीन ब्राह्मण कृत–कृत हो गया।

मलाया देवी के लिंग शरीर का दर्शन

मलाया देवी अमृतसर में एक भक्तिमती स्त्री थी। श्री प्रभु जी के चरणारविन्द के दर्शनार्थ आने का उसका नैतिक नियम था। श्री प्रभुजी ने उसको कई बार योगाभ्यास के लिए आदेश दिया किन्तु वह कुछ न कर पाई और अचानक छत से गिरकर के उसका देहावसान हो गया। श्री मुलखराज जी महाराज ने ध्यान में देखा, मलाया देवी अपने कारण शरीर से श्री प्रभुजी के पास बैठी हुई है, बड़ी उदास मालूम पड़ती है। श्रीमुलखराज जी ने पूछा प्रभो! यह मलाया आज आपके पास उदास सी क्यों बैठी मालूम पड़ती है। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया–बेटा इसको हमने भजन ध्यान के लिए काफी उपदेश दिया, किन्तु इसने कुछ नही किया। आज अकस्मात् छत से गिरकर इसका शरीर छूट गया है और यह हमारे पास आई हुई है।

हम अब यह सोच रहे हैं कि इसे अब कहाँ भेजें। श्री मुलखराज जी ने प्रार्थना की कि–हे करुणासागर जब आपने इसे अपना ही लिया है तो इस पर परम अनुग्रह करके इसको अपना दिव्य धाम दीजिये। आपके चरणों में आकर के भी यदि इसकी सद्गति न हुई तो मन्द प्राणी और कहाँ कर पायेंगे। श्री मुलखराज जी की विनय को सुनकर श्री प्रभुजी ने मुस्कराते हुए आकाश की ओर देखा। श्री प्रभुजी के देखते ही झिलमिल करता हुआ एक दिव्य सिंहासन आया जिसको दिव्य चतुर्भुज पुरुष सँभाले हुए ला रहे थे। मलाया को श्री प्रभुजी ने आज्ञा दी कि–''मरी मेरे पास क्यों बैठी है जा उसमें बैठ जा।''

श्री प्रभुजी के कृपामय आशीर्वाद को पाकर के मलाया चटपट भागकर उस सिंहासन पर जाकर बैठ गयी। उस सिंहासन में बैठते ही वह दिव्यस्थिरधरा चतुर्भुज देवी बन गई। चतुर्भुजा होते ही उसने श्रीप्रभुजी को बारम्बार प्रणाम किया और सिंहासन के रक्षक चतुर्भुज ने भी श्री प्रभुजी को प्रणाम किया। श्री प्रभुजी से आज्ञा पाते ही वह दिव्य सिंहासन तत्काल

देवलोक को चला गया। श्री प्रभुजी के परम अनुग्रह को पाकर के मलाया देवी परम श्रेय को पा गई। यह ज्यों की त्यों सारी घटना श्री मुलखराज जी महाराज ने तत्काल ध्यान में देखी। ध्यान से उठने के बाद पता चलाया तो मालूम हुआ कि थोड़ी देर पहले ही मलाया मकान से गिरकर शरीर छोड़ चुकी थी।

बैकुण्ठपति भगवान विष्णु के दिव्य दर्शन

एक बार श्री मुलखराज जी महाराज के मन में श्री प्रभुजी की कृपा के अमूल्य धन को पाकर के यह धारणा बनी कि अहर्निश अपने अभ्यास को अधिकाधिक बढ़ायें कोई एक क्षण भी खाली नहीं रहना चाहिये। उनको ख्याल आया कि,

''कबिरा, स्वाँसा खाली जात है, तीन लोक का मोल''।

इसी बात को विचार करके जो सहज समाधि उनकी बनी रहती थी उसके बने रहने पर भी बाकायदा रात्रि को भी अपना अभ्यास दृढ़ता के साथ करना आरम्भ कर दिया। मनुष्य के मन में प्रारब्धवश क्लिष्टाक्लिष्ट उत्थान पतन बनता ही रहा करता है ''समाधिस्थ होने पर भी''

''वृत्ति सारूप्य मितरत्र''

''नियम चालू ही रहता है। जब तक उत्कृष्ट सत्व उज्जवल नहीं हो जाता है तब तक रज और तम की वृत्तियाँ भी यदा कदा अपना प्रभाव डालती रहती हैं।

एक बार रात्रि के अभ्यास में तमोवृत्ति निन्द्रा ने अपना प्रभाव डालना प्रारम्भ किया। वह हर बार सचेत होकर बैठते थे किन्तु उस दिन निन्द्रा उनको बार-बार विचलित कर देती थी और यथार्थ स्थिति को बढ़ने नहीं देती थी। इस प्रकार के कालयापन को अपनी बहुत बड़ी हानि समझ करके श्रीमुलखराज जी महाराज ने एक दीवार के पास बैठ करके अपनी चोटी को खूंटी से बांध दिया और फिर भी निद्रा आई तो उन्होंने जोर का झटका लगाया।

उसके फलस्वरूप करुणाघन के मन में महान् करुणा उपजी और उन्होंने देखा कि आकाश से एक महान् प्रकाश नीचे आ रहा है। और उसकी एक तेजधारा इनके सिर पर पड़ी। थोड़ी ही देर के बाद ऊपर को दृष्टि उठाई तो देखा कि बैकुण्ठपति भगवान विष्णु स्वयं दिव्य चतुर्भुज स्वरूप से नीचे की ओर आ रहे हैं और अपने शंख से इनके सिर पर तेज की धारा फेंक रहे हैं साथ ही बैकुण्ठ लोक भी दीख रहा है। ज्यों ही श्री मुलखराज जी ने भगवान् विष्णु के द्वारा इस तेजमय प्रकाश को प्राप्त किया तो वह पूर्ववत् भगवान के चतुर्भुज स्वरूप में लीन होकर स्वयं भी चतुर्भुज होकर बैठ गये। जिस समय थोड़ी सी भी इनकी लयता भंग होती थी तो खुली ही आँखों उत्तमोत्तम दर्शन सामने आते थे। जिस समय ये प्रातःकाल ध्यान से उठे और श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ कटरा भाई सन्तसिंह को गये तो श्री प्रभुजी ने बड़े प्यार से इनको कण्ठ से चिपका लिया और कहा बेटा तुमने अपना चोटी को क्यों इस प्रकार

बांध लिया। क्या यह शरीर तुम्हारा है। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। श्री प्रभुजी के इतना कहने पर श्री मुलखराज जी ने देखा कि स्वयं श्री प्रभुजी की चोटी के बाल खिंचे हुए हैं और टूटे हुये हैं। श्री प्रभुजी की इस कृपा की महानता को जानकर उस दिन से श्री मुलखराज जी और भी ज्यादा सचेत रहने लगे। श्री मुलखराज जी इस स्थिति में जहाँ लीनता रहती थी वहाँ **ईशाद्या सकला देवा दृश्यं ते परमात्मनि।''**

अर्थात्

ईश आदि सभी देव उस परम प्रकाश में दिखलाई देते हैं। इस नियम के अनुसार श्री मुलखराज जी की उस स्थिति के अन्दर रहने वाले सभी सिद्ध योगिराज व अन्यान्य महात्माओं के भी समय–समय पर दर्शन होते रहते थे और वह सभी लोग प्रसन्न मुद्रा में धन्य–धन्य कहते हुए दृष्टिगत होते थे। आनन्दकन्द अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य रामलीला और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के स्थूल दर्शन भी इनको प्राप्त हुये। किन्तु इनका मन सद्गुरुदेव श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में ही विलीन रहता था अतः नाम रूप से उन्हीं के चेतन स्वरूप में समाधिस्थ रहा करते थे।

ब्रह्मपुरी दर्शन

एक बार श्री आनन्दकन्द प्रभुजी श्री मुलखराज जी को इसी तुरीय स्थिति में अपने साथ ऋषिकेश ले गये वहाँ काली कमलीवाले क्षेत्र में कई दिन तक निवास किया। ऋषिकेश से लगभग–6–7 मील ऊपर ब्रह्मपुरी का जंगल है। वन को जाते हुए और वन से लौटते हुए श्री प्रभुजी ने कुछ समय यहाँ निवास किया था। अपने आपको ऋषिकेश आया देखकर के श्री मुलखराज जी के मन में यह धारणा बनी कि अब ऋषिकेश आये हुये हैं, जिस पवित्र वन में श्री प्रभुजी ने निवास किया उसके दर्शन कर लें और अवसर पाकर यह प्रार्थना श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में की। श्री मुलखराज जी की हार्दिक अभिलाषा को देख करके श्री प्रभुजी उनको ब्रह्मपुरी ले गये व वहाँ जाकर ब्रह्मधारा के निकट पहाड़ में वह गुफा थी, जिसमें श्री प्रभुजी ने वन जाते हुए और वन से आते हुये हरिद्वार कुम्भ से पहले निवास किया था।

ब्रह्मधारा के दक्षिण भाग में एक सुन्दर वाटिका थी जिसमें केले के वृक्ष अभी तक बहुत काफी विद्यमान हैं और कुछ वन के वृक्ष लगे हुये हैं। साधुओं ने कुछ और भी पौधे लगा लिये हैं। इसी वाटिका में वन के निवास काल में श्री प्रभुजी निवास किया करते थे। यहाँ पर जो केले लगे हुये हैं इनका बीजारोपण पहले–पहले श्री प्रभुजी ने ही किया था। श्री प्रभुजी यह बढ़िया केले कहीं से लाये थे और अपने हाथों यहाँ लगा दिये थे। आज कल यह केले वहाँ पर काफी मात्रा में फैले हुये हैं। महात्माओं ने कुछ पर्णकुटीरें भी यहाँ आजकल बना ली हैं। उत्तराखण्ड से आने वाली श्रीगंगाजी पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर अपने प्रवाह को बहाती हुई श्रीप्रभुजी की गुफा के पास से ऋषिकेश की ओर निकल गई हैं और उत्तर की ओर से

आने वाली ब्रह्मधारा, जिसको स्वयं श्री प्रभुजी ही इधर की ओर निकाल कर लाये थे वह श्री प्रभुजी की गुफा के पास होती हुई गंगा जी में मिल गई है।

ब्रह्मपुरी का यह निर्मल दृश्य देखते ही बनता है। ब्रह्मधारा के बीच में पत्थरों का चुनाव एक जगह पर इस प्रकार का हो गया है कि उसको श्री प्रभुजी अपने मुखारविन्द से अपना कटोरा बतलाया करते थे। वहाँ बैठकर श्री मुलखराज जी ने जलपान करने की इच्छा प्रकट की तो श्री प्रभुजी ने कुछ जंगली पत्तियाँ श्री मुलखराज जी को दे दी और उनको जीभ पर रखकर जल पीने की आज्ञा दी तो वह जल ऐसा मीठा लगा मानो वह कोई बहुत मीठा शर्बत पी रहे हैं जिसमें दिव्य सुगन्ध भी मिली हुई है।

यह जलपान कर लेने के बाद श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी को ब्रह्मधारा से ऊपर कुछ दूरी पर जंगल में ले गये। वहाँ से कन्द खोद कर मँगवाया। और श्री मुलखराज जी को खाने की आज्ञा दी। श्री प्रभुजी से आज्ञा पाकर के जिस समय उस कन्द को खाया तो उसका स्वाद बहुत ही मधुर था। उस कन्द के खाने पर इनको अनुभव हुआ कि मानो कोई बहुत स्वादिष्ट पकवान खाया है। श्री प्रभुजी ने कहा कि बेटा इन वनों में साधुओं की यही मिठाइयाँ हैं। जिस समय श्री मुलखराज जी कन्द को खोद रहे थे उसी समय पत्तों की आहट सुन करके एक चीता कहीं से निकल आया। चीते को देखकर के श्रीप्रभुजी ने कहा कि बेटा देखो यह क्या आ रहा है। श्रीमुलखराज जी ने उस चीते को हिंस्त्र जन्तु न समझकर अपने ही आत्मा की तरह प्यार से देखा उसकी ओर आगे बढ़े तो वह चटपट भाग गया।

इस प्रकार से ब्रह्मपुरी के जंगल का चारों ओर का दृश्य दिखला करके श्रीमुलखराज जी को श्री प्रभुजी अपने साथ ऋषिकेश लौटा लाये। उन दिनों ऋषिकेश में रेलवे स्टेशन बनने वाला था। श्री प्रभुजी नित्य ही कहीं न कहीं भ्रमण करने जाया करते थे और श्री मुलखराज जी को भी साथ ले जाया करते थे। एक रोज स्टेशन बनने की जगह को देखने को गये, वहां पर बहुत सुन्दर–सुन्दर मृग चर रहे थे, जिस समय यह दृश्य देख ही रहे थे कि देखते ही देखते एक चीता निकला और एक मृग के बच्चे को उठाकर ले गया। इस घटना को देख करके श्री प्रभुजी ने श्री मुलखराज जी को समझाया कि–बेटा इस संसार में जीव जीव का आहार है।

प्राणी मात्र काल के गाल में है। बुद्धिमान मनुष्य वही है जो इस मनुष्य लोक में जन्म पाकर अपने आपको काल चक्र से बचा ले। और जन्म–मरण से छूट करके अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर लें। इस मनुष्य जन्म का यही परम पुरुषार्थ है। इस प्रकार से ऋषिकेश में रह कर के श्री प्रभुजी श्री मुलखराज जी को अनेक आकृति के दृश्य दिखला कर शिक्षा देते रहे और उनके अभ्यास व वैराग्य को दृढ़ बनाते रहे। सायं समय भ्रमण के लिये ले जाया करते थे और रात्रि को बस्ती में लौट आया करते थे।

श्री प्रभुजी काली कमली वाले के क्षेत्र में ठहरे हुये थे। एक दिन वहाँ पर कोई भंडारा था। उस भंडारे में एक उग्र स्वभाव वाले महात्मा बैठ गये जो अक्सर अपने क्रोधवश होकर भंडारों में विघ्न बाधायें पैदा किया करते थे। जिस समय श्री प्रभुजी उस साधु की तरफ बार–बार देख रहे थे तो श्री मुलखराज जी ने पूछा प्रभो! क्या कारण है जो आप इस महात्मा की ओर देख रहे हैं? श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया बेटा यह महात्मा बहुत उग्र स्वभाव का है अक्सर भंडारों में बाधा डाल दिया करता है। हम इसकी ओर इस लिए देख रहे हैं कि यहाँ पर इस प्रकार की कोई उद्दण्डता न करे। उस महात्मा ने भी श्री प्रभुजी की दृष्टि को देख लिया था इस लिए वह चुपचाप भोजन करके जल्दी और साधुओं से पहले ही वहां से उठ कर चला गया।

इस प्रकार से ऋषिकेश व हरिद्वार आदि का भ्रमण करा के कुछ समय के बाद श्री प्रभुजी पुनः श्री मुलखराज जी को साथ लेकर अमृतसर आ गये। वहाँ पर पूर्ववत् अपना नैत्यिक सत्संग का कार्यक्रम भली विधि से चलने लगा।

जल में दिव्य गुणों का प्रकाश–

एक बार श्री आनन्दकन्द प्रभुजी सुन्यारा वाले कुँए पर विराजमान थे। सत्संग बाकायदा चल रहा था। श्री प्रभुजी को कुछ प्यास लगी और उन्होंने श्री मुलखराज जी को कुँऐं से जल लाने की आज्ञा प्रदान की। आज्ञा पाकर श्री मुलखराज जी जल लेने चल दिये तो उनके मन में बागमती गंगा के जल की स्मृति बन उठी। वह मन में विचारने लगे कि श्री प्रभुजी बागमती के जल की बहुत प्रशंसा किया करते हैं तो आज कहीं से उसी प्रकार का जल उपलब्ध हो तो मैं ले जाकर श्री प्रभुजी को पिलाऊँ। यह सोचते–सोचते ही श्री मुलखराज जी एक कुँए पर पहुँचे। कुँए पर पहुँच करके ज्यों ही उन्होंने कुँए की ओर दृष्टि डाली तो कुँए में बहते हुए जल की एक पवित्र धारा दिखलाई दी। श्री मुलखराज जी ने उसी धारा से बड़ी जल्दी जल भर लिया और श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में ले गये।

पास में बैठे हुए और सत्संगियों ने व श्री प्रभुजी ने जलपान किया तो वह जल बहुत ही ठंडा और मीठा लगा। मुक्त कंठ से सभी लोग प्रशंसा करने लगे और जल के इतना मधुर होने का कारण श्री प्रभुजी से ही पूछा। श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि जिस समय यह मुलखराज जल लेने गया था इसके मन में उस समय बागमती जल की धारणा थी सो इसके एकाग्र मन के संकल्प से ही इस जल में इन गुणों का प्रकाश हुआ है।

◆ ◆ ◆

अन्तर्मौन द्वारा योग–साधना

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा, एम. ए. एम–एड.

प्रदूषण की समस्या महानगरों में दिन प्रतिदिन भयंकर होती जा रही है। मोटर, स्कूटर, कार, हवाई जहाज, रेलगाड़ी आदि का धुँआ तथा होर्न की आवाजें कानों को तथा आँखों को व्याधिग्रस्त बना रही हैं। कल–कारखानों की खट–पट तथा धुँए की चिमनियाँ सर्वत्र अशान्त एवं कार्बन का भण्डार पैदा करने में लगी हैं जिससे श्वास–प्रणाली तथा कर्ण कुहरों के माध्यम से सिर पर धमाका करने वाली व्याकुलता के कारण अधिकांश व्यक्ति विक्षिप्त या असामान्य या रोगग्रस्त होते जा रहे हैं। भूमिगत मलप्रणाली के संचय तथा नदियों में उसका विसर्जन करने के कारण जल तथा पृथ्वी दूषित होकर नाना प्रकार की व्याधियों का जन्म हो रहा है। बाह्य जलवायु के दूषित होने के साथ–साथ मानसिक प्रदूषण भी कम नहीं हो रहा। जिधर देखिये भाषण, गाने, शोर शराबा। रेडियो, व ग्रामोफोन के गाने, धार्मिकता के नाम पर तरह–तरह के तमाशे नाक में दम पैदा कर रहे हैं। जिसको देखिये उसे बोलने की बीमारी हो गई है। हर व्यक्ति अपनी कहना चाहता है। बोलता चला जाता है। उसे इस बात की कतई परवाह नहीं है कि उससे सुनने वालों का क्या कुछ भला हो रहा है? कवि को कविता सुनने वाले चाहिए। नेताजी को भाषण सुनने वाले चाहिए। यदि कोई सुनने वाला नहीं मिलता तो आदमी अपने से ही बातें करने लग जाता है। पेड़–पौधों से बातें करने लगता है। चलते–फिरते बुद–बुदाते जाता है। मनोविज्ञान में इसे सिजोफ्रेनिया बीमारी का लक्षण माना जाता है, जिसका कारण दमित भावनायें हैं। बोलने वाला अपने मन में जो कुछ अशान्ति होती है उसे सुनने वाले के मन में उतार देना चाहता है। ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक साधना के अधिकारी तीन काल में भी नहीं हो सकते। क्योंकि अधिक बातून जो कुछ बोलेंगे उसमें नब्बे प्रतिशत झूठ, बुराई व परनिन्दा होगी और दस प्रतिशत काम की बात होगी। इससे पापकर्म का समुच्चय बढ़ता जायेगा तथा शक्ति का अपव्यय होगा। पर्यावरण प्रदूषण समस्या भी बढ़ती जायेगी। कुत्सित विचारों की लहरें, वातावरण में व्याप्त होकर शान्त मन को भी उसी प्रकार अशान्त बना देंगी, जिस प्रकार शान्त तालाब में कोई पत्थर फेंक दे तो पूरे तालाब में लहरों की शृंखला पैदा हो जाती है।

आध्यात्मिक साधना का मूलमंत्र है—शक्ति संचय करना। कम से कम शक्ति खर्च की जाये तभी शक्ति संचय हो सकती है। शक्ति संचय से एकाग्रता प्रतिपादन सरल होता है।

शक्तिहीन को क्रोध अधिक आता है और नाना प्रकार की कल्पनाओं में विचरण करता रहता है। जो शक्ति सम्पन्न है वह शान्त एकाग्र और दृढ़ निश्चयी होगा। मनुष्य द्वन्द्व में जीता है और फिर यह भी चाहता है कि उसे शान्ति और समाधि भी उपलब्ध हो जाये। कई नावों में एक साथ सवारी करने से किसी भी लक्ष्य की उपलब्धि नही हो सकती। हमारी कठिनाई यह है कि न हम पूरी ईमानदारी से भोगी ही बनते हैं और न योगी। दोनों हाथों में लड्डू चाहते हैं। योग प्राप्ति के लिए मौन से बढ़कर शीघ्रगामी कोई और उपाय नहीं है। जैसे को तैसा मिला करता है—यह एक सामान्य नियम है। ईश्वर या ब्रह्म मौन है जैसा कि स्कन्दपुराण में भगवान शंकर ने पार्वती जी से कहा भी है–

अगोचरं तथाऽगमंनाम रूप विवर्जितम्।
निः शब्दं तद् विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति।।

अर्थात् हे पार्वती! ब्रह्म का स्वभाव शान्त, मौन तथा निःशब्द है। वह नाम रूप तथा इन्द्रियातीत है। सन्तों ने भी कहा है कि–''इन्द्रिय मन का विषय नहीं, वहां न बुद्धि व्यवहार।'' अर्थात् ब्रह्म, इन्द्रियों के मन तथा बुद्धि के विषयों से परे शान्त एक रस सम है। उसको पाने के लिए हमें भी इन्द्रिय विहीन, मन रहित तथा बुद्धि के चिन्तन धर्म से परे होना पड़ेगा। एकान्त में प्रिय से मिलन होगा। हमारी सबसे बड़ी परेशानी यह है कि हम इधर–उधर जंगलों पहाड़ों में एकान्त ढूँढ़ते फिरते हैं। हमारे अन्दर–बाजार है, शोरगुल है। हम अकेले में भी अकेले नहीं हैं, सारी दुनिया की याद, चिन्ता और परेशानी से हर दम भरे हुए हैं। हमने प्यारे के लिए अपने दिल को थोड़ी देर भी तो खाली नहीं किया और शिकायत करते हैं कि हमारा ध्यान नहीं लगता, दर्शन नहीं होते। कुछ देर ही हम जितेन्द्रिय हो जायेंगे। काम क्रोध लोभ मोह से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा, मन की उधेड़बुन, संकल्प–विकल्प को थोड़ी देर बन्द कर मन को मौन कर लें तो निःसंकल्पता स्वतः उपलब्ध हो जायेगी। इसी तरह बुद्धि का मौन–चिन्तन विचार–शून्य स्थिति उपलब्ध होते ही समतावस्था आ जायेगी। उसके आते ही—योगदर्शन में महर्षि पतंजलि कहते हैं–

निर्विचार वैशारऽद्येध्यात्म प्रसादः

अर्थात् वार्ता में निर्विचार स्थिति आते ही आत्मिक सुख की अनुभूति होगी—शान्ति और प्रकाश का अनुभव होगा। अंग्रेजी भाषा में एक कहावत प्रसिद्ध है–

Speech is Silver but Silence is Gold.

अर्थात् वार्ता की अपेक्षा मौन हजार गुना कीमती है। वाणी, मन तथा बुद्धि—तीनों का मौन सध जाये तो मौन में रहने वाले के साथ बात–चीत होने लगेगी।

रसना तथा जिह्वा एक ही इन्द्रिय है किन्तु उसके दो कार्य हैं—बोलना तथा आस्वाद

लेना। ईश्वर ने कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को अलग–अलग बनाया है किन्तु जिह्वा को कर्म और ज्ञान दोनों कार्य करने की स्वतन्त्रता दे दी है। इसी इन्द्रिय के ठीक–ठीक व्यवहार से व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है और इसके दुरुपयोग से इस लोक में झूठा, बेईमान, कहाकर अपयश लेता है तथा भक्षया भक्ष्य का आहार कर बुद्धिभ्रष्ट हो नरकगामी बनता है।

प्रिय सत्य तथा हितकारी सत्य बोलना सर्वोत्तम तप है। इसका पालन न हो सके तो मौन साधना सबसे अच्छा तप है। शब्द से यदि अपने विचार प्रकट करने पर हमने नियन्त्रण कर लिया और हावभावों से भी विचार प्रकट नहीं करते तो यह स्थिति काष्ठ मौन स्थिति कहलाती है। जब ज्ञान की परिपक्व दशा उपलब्ध हो जाती है तो 'ज्ञाने मौनम्' की स्थिति आती है जिसे 'सुषुप्ति मौन दशा' कहते हैं। वाणी व्यवहार के लिए–कहने वाला, सुनने वाला तथा बात चीत का विषय–ये तीन बातें आवश्यक हैं। पूर्णज्ञान हो जाने पर सुनने वाला और कहने वाला तथा विषय तीनों ही जब ज्ञानरूप हो गये–एक हो गये तो कौन किससे क्या कहे। मौन–केवल मौन–मौन के सिवा और कुछ नहीं ये स्थिति पूर्ण ज्ञानी की होती है।

अध जल गगरी छलकत जाय।
भरी गगरिया पूरित जाय।।

विचार संकल्प तथा विषयतृष्णा जिस क्षण लुप्त हो जाते हैं उसी क्षण हम हद से परे अनहद में पहुँच जाते हैं। हमारी इच्छा क्रिया व ज्ञान शक्ति अनन्त के साथ एक रस हो जाती है उस समय हमारी वाणी 'ऋतम्भरा' से निकलती है जो कि सत्य के सिवाय और कुछ नहीं होती। अमोघवाणी मौनदशा में ही प्राप्त होती है। उस अवस्था में जैसा चिन्तन किया जाये वैसा परिणाम अवश्य सामने घटित होता है। शाप वरदान इसी अवस्था में सत्य होते हैं। क्योंकि इस स्थिति में हमारा सम्बन्ध अनन्त शब्द राशि, अनहद नाद तथा सत्–चित्–आनन्द से डाइरेक्ट हो जाता है। मौन से सुषुम्ना द्वार खुलता है, भावनाओं तथा संवेगों पर जबरदस्त नियंत्रण हो जाता है। धैर्य, मन की शान्ति, आत्म विश्वास, एकान्तप्रियता, संकल्प शक्ति का विकास तथा ऊर्ध्वरेतस प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव होता है। मौन साधना आत्मतप है। बौद्धधर्म में सम्यक् वाक् को नियमों के अन्तर्गत बहुत महत्त्व दिया गया है। अष्टमार्ग के अभ्यास से सम्यक् ज्ञान की प्रतीति एवं स्थिति होती है।

जिन्हें मौन होने की कल्पना आ गई वे भीड़ में रहकर भी एकान्त का आनन्द ले सकते हैं तथा घर में रहते हुए ही वन का सुख प्राप्त कर सकते हैं। मौन में पहुँचकर ब्रह्मा, विष्णु, भगवान सदाशिव का ध्यान करने से चटपट समाधि सिद्ध होती है। वाणी से कुछ न कहना ही मौन नहीं है बल्कि मन और बुद्धि का अन्तर्मौन सच्चा मौन है। जो वाणी से कुछ नहीं कहते

किन्तु मन में विचारों की खिचड़ी पकाया करते हैं उन्हें भगवान श्रीकृष्ण ने मिथ्याचारी, ढोंगी तथा पाखण्डी कहा है–

कर्मेन्द्रियाणिं संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।
३/६

इन्द्रियों के बाह्य व्यापार को रोकने पर अन्तर्मुखी बना जा सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी राक्षस अज्ञान के द्वारा आत्मा को आणव मलों से आवृत कर देते हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं–

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञान विज्ञान नाशनम्।।
३/४१

ज्ञान विज्ञान को नष्ट करने वाली पाप रूपी इच्छा को इन्द्रिय जय के द्वारा हे अर्जुन नष्ट करो क्योंकि इन्द्रियां, मन और बुद्धि इस इच्छा के अधिष्ठान हैं।

मौन साधना से परानवित्त की प्राप्ति हो जाती है। निर्भराभक्ति पाकर जप–तप–संयम करने नहीं पड़ते ईश्वर की वृथा यहां प्राप्ति होती है तथा साधन स्वतः हो जाते हैं। कबीर ने इस अवस्था का वर्णन किया है–

माला जपूं न कर जपूं
मन में जपूं न राम।
राम हमारा हमें जपे
हम पाये विश्राम।।
कबिरा मन निर्मल भया
जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरैं
कहत कबीर कबीर।।

मौन साधना सच्चे अर्थों में हो जाये तो साधक योगी बन जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है। कुलार्णवतंत्र के नवमोल्लास में कहा गया है कि जिसका इन्द्रिय समूह निष्पन्द हो गया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसने वायु को अपने में लीन कर लिया है, जो मृतवत् हो गया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसका वायु–संचार नष्ट हो गया है, द्वन्द्व सहन में पाषाणवत् जो स्थित है, परमात्मतत्त्व का जिसे पूर्णज्ञान है, जो जाग्रत और स्वप्न अवस्था में भी सुषुप्तिवत् स्थित रहता है, वह योगी हो जाता है। जिसकी बाहर सूंघने–सुनने, स्पर्श करने और देखने की

क्रिया रुक गई है तथा सुख-दुःख में एक रस है, निःसंकल्प और विचार बोध विहीन हो काष्ठवत् मौन हो गया है, परम शिव में लीन होकर वह समाधिस्थ रहता है। जैसे गहरे अंधेरे में व्यक्ति कुछ भी नहीं देख पाता उसी प्रकार योगयुक्त को यह प्रपंच भासित नहीं होता। इस प्रकार मौन-साधना से देहाभिमान नष्ट हो जाने पर परमात्मज्ञान, आत्म-तुष्टि युक्त होकर योगी का जहां भी मन जाता है वहीं-वहीं उसे समाधि अवस्था प्राप्त होती रहती है परमात्मा के दर्शन कर हृदय की ग्रन्थियाँ (ब्रह्म, विष्णु तथा रुद्र ग्रन्थि) खुल जाती हैं, सभी संशय नष्ट हो जाते हैं तथा कर्म समुच्चय का आत्यन्तिक क्षय हो जाता है। उसके पश्चात् योगी की सर्व कर्म निवृत्ति ही सर्वोत्तम पूजा है, मौन ही सर्वोत्तम जप है, विचार रहित होना ही सर्वोच्च ध्यान है और किसी प्रकार की इच्छा न होना ही परम फल है-'जिनको कछू न चाहिये वे शाहन के शाह।'

निष्पन्द करणग्रामः स्वात्मलीन मनोऽनिलः।
य आस्ते मृतवत्साक्षात् जीवन्मुक्तः स उच्यते।।
प्रणष्ट वायु संचारः पाषाण इव निश्चलः।
परजीवैक-धामज्ञो योगी योग विदुच्चयते।।
स्वप्न जाग्रत् अवस्थायां सुषुप्तिवत् योऽवतिष्ठते।
निःश्वासोच्छ्वास-हीनश्च निश्चितं मुक्त एव सः।।
न श्रृणोति न चाघाति न स्पृशति न पश्यति।
न जानाति सुखं दुखं न संकल्पयते मनः।
न चापि किंचिज्ज्ञानाति न च बुध्येति काष्ठवत्।
एवं शिवे विलीनात्मा समाथिस्थ इह उच्यते।।
यथा गाढान्धकारस्थो न किंचिदिह पश्यति।।
अलक्ष्यञ्च तथा योगी प्रपञ्च नैव पश्यति।।
देहाभिमान गलिते विज्ञाते परमात्मानि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।।
भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परात्मनि।।

X X X X X

अक्रियैव परा पूजा मौन मेव परो जपः।
अचिन्त्यैव परं ध्यानं अनिच्छैव परं फलम्।।

कुलार्णव तंत्र ९/३८

साधना की भाषा मौन ही है। जो बहुत कहते और बहुत सुनते रहते हैं वे चिकने घड़े और उच्च पर्वत शिखर बन जाते हैं। उनके हाथ तर्क के बाण भले ही आ जायें भक्ति का उदय कम हो पाता है। मौन की भाषा में ही आत्मानन्द कहा जा सकता है। शब्द से कहने पर ब्रह्मानन्द झूँठा हो जाता है–सेकिण्ड हेण्ड हो जाता है। शब्द माया की भूमिका पर रहता है। उससे परे निःशब्द अवस्था है, वही ब्रह्म है। गुरुदेव का असली उपदेश मौन में ही होता है और मौन रहकर ही वे हृदय चक्की को चुपचाप इच्छित दिशा में घुमा देते हैं। मौन व्याख्यान से ही गुरुदेव शिष्यों के सारे सन्देह दूर कर देते हैं। शास्त्रों में कहा गया है–

गुरोस्तु मौन व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः।

सच्चित्तत्व, इन्द्रिय, मन–वाणी से परे, देशकाल की हद से परे अनहद है। मौन द्वारा हम कालातीत, देशातीत, विचारातीत भावातीत तथा संकल्पातीत सत्ता के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इस क्षेत्र का नाम समाधि है। अच्छे सद्‌गुरु भाषणबाजी कम किया करते हैं। मौन से ही सारा काम कर देते हैं। जो शुद्ध मौन की अवस्था में जाते हैं वे त्रैलंग स्वामी की तरह काष्ठमौन पाषाण शिलावत् हो जाते हैं। १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में वाराणसी में सचल शिव के रूप में त्रैलंग स्वामी रहा करते थे। वे गंगा में पद्मासन लगाये कमल के पुष्प की तरह इधर से उधर घूमते रहते थे। उनकी सारी शारीरिक क्रियायें समाप्त हो गई थीं। वे पूर्णरूपेण जीवनमुक्ति की अवस्था में स्थित थे। आँख उठाकर देखना भी नहीं होता था, किसको देखते? आत्मा से भिन्न कोई और वस्तु होती तो देखें? सब कुछ ही आत्मतत्व है–फिर दृश्य द्रष्टा और दृष्टि का भेद ही समाप्त हो गया। भला आँख भी अपने आप को देखती है? वाराणसी भगवान विश्वनाथ की पावन नगरी है। वहां भगवान सदाशिव साकार रूप में सदा रहते हैं। त्रैलंग स्वामी जैसे सिद्ध पुरुष सदा सर्वदा सर्वकाल में वहां विद्यमान रहते हैं। ऐसे पुरुषों को पहचानने की आँख चाहिए आज भी वहां उसी अवस्था के सिद्धपुरुष मिल सकते हैं?

लोक व्यवहार में भी मौन, जीवन को अधःपतन से बचाकर उन्नत शिखर पर ले जाता है किसी के दोष कथन के लिए मौन हो जाना अच्छा है। अपने सत्कर्म गुणगान करने में भी मौन हो जाने से पुण्य क्षय नहीं होता। यदि कोई दान देकर उसका आख्यान कर देता है तो उसका पुण्य उसी समय समाप्त हो जाता है। मंत्र जप भी मौन होकर जपना श्रेयस्कर है। हमारे पर्वों में 'मौनी अमावस्या का महात्म्य साधना की इसी सार्थकता को लक्षित करता है। मौन–साधना करने पर वाक् सिद्धि शीघ्र हो जाती है। जब दो लोगों में वाद–विवाद हो रहा हो तो यदि एक व्यक्ति चुप हो जाये तो दूसरा अपने आप शान्त हो जायेगा। लोक में कहावत भी प्रचलित है–'एक चुप सौ को हरा देता है।'

गीता में भगवान ने आत्म विभूतियों का उल्लेख करते हुए मौन को परमगुह्यज्ञान और आत्मस्वरूप बताया है। मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्' गुह्यज्ञान का अधिकारी मौनी ही होता है। जिस घड़े में छेद हो उसमें मूल्यवान वस्तु नहीं रखी जाती। इसी प्रकार ब्रह्म विद्या का वही अधिकारी है जो समुद्र पीकर भी ओष्ठ सूखे रखता है। सब कुछ छिपा लेता है उसकी योग सम्पत्ति सुरक्षित रहती है अन्यथा अहंकार रूपी बटमार लूटकर योगी को खाली कर देते है। दिव्यज्ञान अधिकारी चपल व्यक्ति कदापि नहीं हो सकते। गुरुदेव उन्हें बाहर का संसार–धन मान–प्रतिष्ठा भले ही दे दें उसे अपनी प्यारी वस्तु योग समाधि नहीं देते। क्योंकि अपात्र के पास जाकर विद्या नष्ट हो जाती है। शतपथ ब्राह्मण में एक वाक्य है जिसमें विद्या ब्रह्मज्ञानी से कहती है कि मैं तुम्हारी शरण हूँ–तुम्हारा धन हूँ, मुझे गुप्त रखकर मेरी रक्षा करना। मुझे लंपट, वाचाल और व्यभिचारी तथा मुझे न चाहने वाले को कदापि न देना। अन्यथा मैं वीर्यवती नहीं रहूँगी। वीर्यवती का अर्थ है अन्यों को प्रकाशित तथा बल युक्त, शक्तिशाली बनाने की सामर्थ्य–

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम
शेवधिरस्मि.......।

तंत्र शास्त्रों में बार–बार यह चेतावनी दी गई है–

गोपनीयं गोपनीयम्
गोपनीयम प्रयत्नत:।

जिस प्रकार एटमबम्ब का सिद्धान्त हर एक के हाथ लग जाये तो एक क्षण में विश्व संहार हो जायेगा। बन्दर के हाथ में दियासलाई पड़ जाये तो वह अपनी दुम में सबसे पहले आग लगा लेगा। इसी प्रकार इन्द्रिय संयम के न होने वाले को योगाभ्यास कराया जायेगा तो शक्ति जगते ही वह पागल अहंकारी तथा लोगों को शाप और वरदान देकर अपने जन्म मरण के चक्र को पुण्य पाप के बढ़ाने से समाप्त करने के स्थान पर बढ़ाने वाला हो जायेगा। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ऐसे साधकों को अपने पास से अलग कर देते थे जो अपनी शक्ति को सम्भाल नही पाते थे। प्रदर्शन तथा अपनी पूजा करवाने के चक्कर में पड़े थे। वे ऐसे साधकों के विषय में पंजाबी में कहा करते थे–भाण्डे तो मिले मगर चुंदे मिले। अर्थात् पात्र तो मिले किन्तु फूटे मिले हैं। जिनमें से रिसकर सारा पदार्थ निकल जायेगा और फिर वे खाली के खाली हो जायेंगे जिससे सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा।

जगन्नियन्ता योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता के बारहवें अध्याय में अपने प्रिय भक्त लक्षणों कर निरूपण करते हुए कहा है कि–

तुल्य निन्दा स्तुति मौनी
संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्मक्ति–
मान्मे प्रियो नरः।।
१२/१९

अर्थात् जो निन्दा और स्तुति में सदा एक भाव से रहता है तथा नितभाषी तथा मौनी है, जो कुछ प्राप्त हो गया उसी को प्रभु का प्रसाद समझकर उससे सन्तुष्ट है, किसी घर के प्रति मोह नहीं रखता, दृढ़ संकल्प तथा भक्ति से युक्त है, वह मनुष्य मेरा प्रिय है। भगवान ने अपने इस उपदेश को 'धर्म्यामृत' तथा धर्मानुकूल तथा अमृत के तुल्य साधना को जीवन देने वाला कहा है। जो उनके इस उपदेश का अक्षरशा? पर्युपासते 'पालन करते हैं वे भगवान के अत्यधिक प्रिय भक्त होते हैं। ऐसे भक्तों के वश में भगवान हो जाते हैं। मौन साधना से आत्म प्रसाद मिलता है। मौन मानस तप कहा गया है। देखिये–

मनः प्रसादः सोम्त्वं
मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्
तपो मानसमुच्यते।
–गीता १७/१६

अर्थात् मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, आत्म संयम और सद्भाव–ये सब मानसिक तप कहलाते हैं। गीता के १८वें अध्याय के ५२ वें श्लोक में शान्ति तथा ब्रह्मत्व की प्राप्ति के साधन के रूप में 'वाक्काय यत मानसः', का भगवान ने उपदेश दिया है।

एक महात्मा के पास साधक पहुँचा। वह महात्मा जी से बोला—महाराज मेरे कल्याण का मुझे उपदेश दीजिए। महात्मा ने कहा, अच्छा, कल आना। साधक दूसरे दिन आया और उपदेश के लिए प्रार्थना करने लगा। महात्मा एक घण्टे शान्त बैठे रहे और अन्त में साधक से बोले–कल आना। साधक निर्दिष्ट समय पर उपस्थित होकर उपदेश की प्रार्थना करने लगा। महात्मा जी ने पूर्ववत् क्रम एक महीने तक दुहराया। अन्त में साधक के धैर्य का प्याला छलक उठा और बोला–भगवान आप रोजाना बुलाते हैं पर उपदेश नहीं देते। महात्मा जी बोले मैंने तत्व का उपदेश तो कर दिया। मुझे दुःख है तू समझा नहीं। शान्त होकर मौन होकर मौन अवस्था में पहुँच कर मौन हो जा, पूर्ण हो जायेगा। यही उपदेश मैं क्रियात्मक रूप से तुझे देता रहा हूँ।

* * *

मण्डी हिमाचल का वार्षिक योग शिविर

अनिल दुबे, दतिया (म. प्र.)

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी छोटी काशी के नाम से प्रसिद्ध बाबा भूतनाथ की नगरी मण्डी (हिमाचल प्रदेश) में प्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की असीम अनुकम्पा से योग सिद्धाश्रम मण्डी में पाँच दिवसीय दिव्य योग शिविर दिनांक 6 जून से 10 जून 2019 तक धूमधाम से मनाया गया।

योग शिविर योगी डॉ. दासलाल जी महाराज श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम के आचार्य के परम सानिध्य में हुआ। कार्यक्रम अपने निर्धारित समयानुसार प्रातः 5 से 11.30 तक, सायं 4 बजे से रात्रि 8.30 तक हुआ। प्रातः आरती, ध्यानाभ्यास जीवन तत्त्व क्रियायें, योगासन, प्राणायाम, षटकर्म क्रियायें, भजन संकीर्तन, गीता पाठ एवं गीता जी पर सार प्रवचन आचार्य जी द्वारा दिये गये। आचार्य जी द्वारा गीता के दैवासुर सम्पद्विभाग योग, श्रद्धात्रय विभाग योग, मोक्ष सन्यास योग, अर्जुन विषाद योग एवं साँख्य योग के मूल पाठ के साथ-साथ गीता जी के गूढ़ रहस्यों को बड़े ही सरल शब्दों में समझाया। दैवासुर समपद्विभाग के अन्तर्गत 26 गुणों को बारी-बारी से विस्तारपूर्वक समझाया दो प्रकार के मनुष्यों का दैवी प्रकृति दूसरी आसुरी प्रकृति का वर्णन करते हुये आचार्य जी ने अपने व्याख्यान में बतलाया कि जो पुरुष शास्त्र विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से आचरण करता है वह न तो सिद्धि को प्राप्त करता, न परमगति को एवं न ही सुख को प्राप्त करता है। इसलिये सभी मनुष्य दैवी प्रकृति धारण करें।

आचार्य जी ने श्रद्धात्रय योग विभाग के अन्तर्गत जीव द्वारा अर्जित तीन गुणों-सतोगुणी, रजोगुणी एवं तमोगुणी का विस्तारपूर्वक वर्णन करके भी समझाया।

सायंकालीन अपने व्याख्यान में आचार्य जी ने वेद, उपनिषद, गीता, योग दर्शन आदि के माध्यम से योग पर व्याख्यान दिये एवं मनुष्य को अपनी सार्थकता आनंदमय जीवन एवं अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये योग का मार्ग अपनाना ही पड़ेगा तभी हम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

आचार्य जी ने अपने व्याख्यान में सद्गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की परम्परा ध्यान योग पर विशेष बल दिया सभी गुरु भक्तों को कम से कम 3 घण्टे जप, ध्यान करने का संदेश दिया। आचार्य जी ने योग के विभिन्न ग्रंथों के माध्यम से अष्टाँग योग, चित्त की वृत्तियों, सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात समाधि एवं ध्यान की प्रक्रिया आदि को विस्तारपूर्वक समझाया।

योग शिविर में विभिन्न प्रांतों हिमाचल, राजस्थान, हरियाणा, उ. प्र., मध्यप्रदेश, दिल्ली आदि स्थानों से सैकड़ों गुरु भक्तों ने योग शिविर में भाग लेकर आध्यात्मिक, मानसिक,

शारीरिक लाभ प्राप्त किया।

बनारस से प्रदीप जी, राघवेन्द्र जी, कुराना से राजवीर जी, संवाई से आयुष, दीपक एवं मंडी के स्थानीय गुरु भाइयों ने गुरुदेव के भाव विभोर कर देने वाले भजनों की प्रस्तुति दी।

आश्रम की समिति के समस्त सदस्यों द्वारा बाहर से आये सैंकड़ों गुरु भक्तों की ठहरने की, भोजन व्यवस्था आदि की उत्तम व्यवस्था की थी।

दिनांक 10 जून को प्रभुजी का विशाल भण्डारा हुआ वरिष्ठ गुरुभाई श्री हरी सिंह जी ने बाहर से आये गुरु भाइयों का हृदय से कार्यक्रम में उपस्थित होने के लिये आभार व्यक्त किया। दिनांक 10 जून को ही दोपहर बाद समस्त मंडी आश्रम के सदस्यों ने श्री आचार्य जी की भाव भीनी विदाई की। आचार्य जी मंडी आश्रम से प्रस्थान कर अगले दिन ऋषिकेश आश्रम को रवाना हुये जहाँ 12 जून को गंगे मईया स्नान कर आश्रम में प्रभुजी का प्रसाद ग्रहण कर श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम के लिये प्रस्थान किया एवं 10 जून से 25 जून तक विश्व योग दिवस के उपलक्ष्य में योग शिविर का प्रारम्भ किया।

जय गुरुदेव !

सिद्धगुफा आश्रम में विश्वयोग दिवस

पंचम अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 2019 के अवसर पर श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र संवाई (एत्मादपुर) में प्रतिवर्ष की भाँति 10 जून से 25 जून तक दिव्य योग शिविर का आयोजन, योगाचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज के संरक्षण में किया जा रहा है।

21 जून को प्रात: 5 बजे से योगासन एवं षटकर्मों का अभ्यास आचार्य जी द्वारा कराया गया एवं महाप्रभुजी की अनुपम देन जीवन तत्त्व क्रियाओं का भी अभ्यास कराया गया। इस अवसर पर एस. डी. एम. श्री अमरीश कुमार विंद, श्री जगवीर सिंह ब्लॉक प्रमुख, श्री टीकम सिंह तोमर सांसद प्रतिनिधि, श्री हरीशंकर शर्मा आर. एस. एस. विभाग संघसंचालक, श्री सुबोध जी आदि अतिथिगण योग शिविर में उपस्थित हुये।

योग शिविर में बाहर एवं स्थानीय लोगों की सैंकड़ों की संख्या में उपस्थिति रही।

आचार्य जी ने योग के महत्त्व पर प्रकाश डाला। बाहर से आये हुये अतिथियों ने भी योग दिवस के अवसर पर अपने विचार व्यक्त किये। योगासन एवं षटकर्मों के प्रदर्शन के लिये श्री सिद्धगुफा आश्रम के आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज एवं अतिथियों द्वारा प्रमाण पत्र एवं पुरस्कार वितरण किये गये। कार्यक्रम समाप्ति उपरान्त श्री प्रभुजी का प्रसाद वितरण किया गया।

योग–आसन

विधि – इस आसन के करने के लिये पहिले सावधानी से सीधे लेट जायें, शरीर को ढीला छोड़ दें, उसके बाद अपने पैरों को धीरे–धीरे ऊपर की ओर उठाये, जब पैर लगभग एक हाथ भर ऊपर उठ जायें तब उनका अपने शरीर के बलाबल के अनुसार वहाँ ही रोक दें, कुछ देर रोके रहें, उसके बाद धीरे – धीरे नीचे को ले आयें व जमीन पर टिका दें, सारे शरीर को ढीला छोड़ दें। इसी का नाम उत्तानपाद आसन है। इसी प्रकार धीरे – धीरे अपने पैरों को उठाकर इधर–उधर झुला भी सकते हैं व अभ्यास बढ़ जाने पर कई बार भी धीरे–धीरे ऊपर व नीचे ला सकते हैं।

समय – बहुत धीरे – धीरे करना चाहिये।

लाभ– इस आसन का प्रभाव मल विसर्जनी नाड़ियों पर अधिक पड़ता है अतः मल शोधक है। कोष्ठबद्धता का नाशक है। स्नायु दौर्बल्य को दूर करता है।

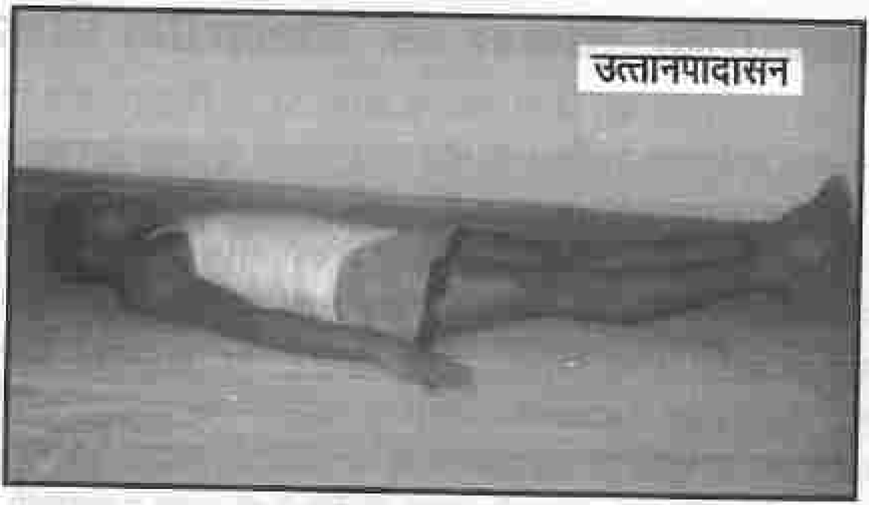

* * *

सिद्धयोग

'सिद्धयोग' या 'सिद्धमार्ग' क्या है ? जिस पथ से विना कष्ट के योग प्राप्त होता है, उसी पथ को सिद्धमार्ग कहते हैं। योग रुप सिद्धि प्राप्त करने का पथ सुषुम्ना नाड़ी है ; जब इस नाड़ी से प्राणवायु प्रवाहित होकर ब्रह्मरन्ध्र में जाकर स्थित होता है जब साधक को जीव ब्रह्मैक्य ज्ञानरुप योग प्राप्त होता है। सर्वप्रथम गुरुदेव द्वारा शक्ति का संचार होने पर कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है और उसके पश्चात् क्रमोन्नति के द्वारा योग लाभ होता है। इसमें योगों की आधार स्वरूपा मूलाधार स्थिता कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिए योगशास्त्रोक्त आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि कुछ भी अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, केवल गुरु शक्ति के प्रभाव से ही कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत हो जाने से स्वाभाविक रुप में योगमार्ग प्राप्त हो जाता है। इसी को सहजकर्म कहा गया है। स्वभाव से जो होता है, वही वास्तव में सहज है। सद्गुरु की कृपा से शक्तिसंचार के द्वारा सिद्धिमार्ग प्राप्त होने पर एकमात्र गुरुपदिष्ट मन्त्रजाप या ध्यान के द्वारा ही स्वभावतः आसन, मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान आदि सब योगांग अनायास साधित हो जाते हैं, इसके लिए विशेष परिश्रम करने या चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं होती अथवा गुरु से इन सब आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि का स्वतन्त्र रुप से उपदेश लेने की भी जरुरत नहीं होती।

इसी पथ से क्रमशः अग्रसर होते–होते साधक शीघ्र ही योगसिद्धि प्राप्त करके कृतार्थ और धन्य हो जाता है। इस उपाय से स्वभावतः योगांगादि साधनक्रम से जीव और ब्रह्म का ऐक्यज्ञान अथवा अखण्ड चैतन्यानुभूति होती है और इसी को सिद्धिमार्ग कहते हैं।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20

JULY 2019

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

☐☐☐☐☐☐

सूर्यः शौर्यमथेन्दुरुच्चपदवीं सन्मंगलं मंगलः
सद्बुद्धिं च बुधो गुरुश्च गुरुतां शुक्रः सुखं शं शनिः।
राहुर्बाहुबलं करोतु विपुलं केतुर्जनस्योन्नतिं
नित्यं प्रीतिकरा भवन्तु जगतां सर्वे प्रसन्ना ग्रहाः॥

चराचरात्मक संसार के सभी प्राणियों के लिये सूर्य शूरता, चन्द्र परमोच्चपद, मंगल समांगल्य, बुध सद्बुद्धि, बृहस्पति गौरव–गरिमा, शुक्र सर्वसुख, शनि कल्याण, राहु आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक–सब प्रकार की शक्तियाँ और केतु जनवर्ग की लौकिक–पारलौकिक अभ्युन्नति करें। इस प्रकार सूर्यादि सभी नवग्रह प्रसन्नतापूर्वक विश्व में परस्पर प्रेम, सद्भाव, सौहार्द देने वाले हों।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री सन्तमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ऑफसेट एवं प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566
सम्पादक : आचार्य श्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा